BRIHAT PARASAR HORA SASTRAM

PART-1

।।विषयानुक्रम।।

क्रम सं०	नाम	पृष्ठ	श्लोक सं०
1.	सृष्टिक्रमकथनाध्याय	17	24
2.	अवतार कथनाध्याय	22	13
3.	ग्रहगुणस्वरूपाध्याय	24	88
4.	राशिस्वरूपाध्याय	44	42
5.	विशेष लग्नाध्याय	53	16
6.	वर्णददशाध्याय	58	13
7.	षोडशवर्गाध्याय	64	52
8.	वर्गविवेचनाध्याय	91	43
9.	राशिदृष्टिभेदाध्याय	107	16
10.	अरिष्टाध्याय	112	44
11.	अरिष्टभंगाध्याय	123	8
12.	भावविवेकाध्याय	125	18
13.	लग्नभावाध्याय	128	16
14.	धनभावफलाध्याय	131	16
15.	तृतीयभावफलाध्यायः	134	15
16.	सुखभावफलाध्याय	137	14
17.	पंचमभावफलाध्यायः	140	31
18.	षष्ठभावफलाध्याय	145	27
19.	सप्तमभावफलाध्याय	150	42
20.	आयुर्भावफलाध्याय	159	15
21.	भाग्यभावफलाध्याय	162	33
22.	दशमभावफलाध्याय	167	21
23.	लाभभावफलाध्याय	171	10
24.	व्ययभावफलाध्याय	173	13
25.	भावेशफलाध्याय	177	107
26.	अप्रकाशग्रहफलाध्याय	193	86
27.	पदाध्याय	206	34
28.	उपपदाध्याय	213	42
29.	अर्गलाफलाध्याय	220	18

30.	कारकाध्याय	224	35
31.	कारकांशफलाध्याय	229	77
32.	योगकारकाध्याय	244	41
33.	नाभसयोगाध्याय	251	51
34.	विविध योगाध्याय	260	54
35.	रविचन्द्रयोगाध्याय	272	17
36.	राजयोगाध्याय	275	69
37.	धनयोगाध्याय	289	47
38.	दरिद्रयोगाध्याय	296	22
39.	आयुर्दायाध्याय	299	91
40.	मारकभेदाध्याय	320	122
41.	वृत्ति (व्यवसाय) निर्णयाध्याय	345	59
42.	ग्रहावस्थाध्याय	362	268
43.	ग्रहभावबलाध्याय	403	50
44.	इष्टकष्टाध्याय	424	20
45.	दशाध्याय	429	46
46.	कालचक्रदशाध्याय	441	102
47.	विभिन्नदशाध्याय	460	66
48.	अन्तर्दशाध्याय	485	13
49.	दशाफलाध्याय	497	87
50.	भावेशदशाफलाध्याय	509	20

1

।।अथ सृष्टिक्रमकथनाध्यायः।।

शास्त्रावतरण :–

अथैकदा मुनिश्रेष्ठं त्रिकालज्ञं पराशरम्।

पप्रच्छोपेत्य मैत्रेयः प्रणिपत्य कृतांजलिः।। 1 ।।

किसी समय मैत्रेय मुनि ने, तीनों कालों की गति को जानने वाले मुनिप्रवर पराशर जी के पास जाकर, प्रणाम करके, हाथ जोड़कर पूछा।

भगवन् ! परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।

त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं होरागणितं संहितेति च।। 2 ।।

एतेष्वपि त्रिषु श्रेष्ठा होरेति श्रूयते मुने !।

त्वत्तस्तां श्रोतुमिच्छामि कृपया वद मे प्रभो !।। 3 ।।

कथं सृष्टिरियं जाता जगतश्च लयः कथम् !।

खस्थानां भूस्थितानां च सम्बन्धं वद विस्तरात् !।। 4 ।।

मैत्रेय बोले– हे भगवन् ! सभी वेदांगों में श्रेष्ठ ज्योतिष शास्त्र परम पवित्र, पुण्यप्रद व गुप्त है। इसके गणित, होरा व संहिता ये तीन स्कन्ध कहे जाते हैं।

इन तीनों में भी होरा स्कन्ध अधिक आदरणीय है, इसी कारण आपके मुख से मैं होरा स्कन्ध के विषय में सुनना चाहता हूँ। कृपया आप मुझे बताएँ। यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ व कैसे इसका लय होता है ! आकाश में स्थित पिण्डों, ग्रहों, नक्षत्र तारादिकों का भूमि पर स्थित प्राणियों से क्या सम्बन्ध है ? इत्यादि प्रश्नों को मुझे विस्तार से बताएँ।

साधु पृष्टं त्वया विप्र ! लोकानुग्रहकारिणा।

अथाहं परमं ब्रह्म तच्छक्तिं भारतीं पुनः।।5 ।।

सूर्यं नत्वा ग्रहपतिं जगदुत्पत्तिकारणम्।

वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम्।। 6 ।।

पराशर ऋषि ने कहा– विप्रवर ! आपने संसार की हित कामना से बहुत अच्छी बात पूछी है। एतदर्थ अब मैं परम ब्रह्म, ब्रह्म शक्ति सरस्वती देवी को एवं समस्त संसार की उत्पत्ति के कारण रूप भगवान् ग्रहपति सूर्य

को प्रणाम करके ज्योतिष शास्त्र को यथावत् कहता हूँ, जैसा मैंने पूर्वकाल में ब्रह्मा जी के मुखारविन्द से सुना था ।

ज्योतिष के अधिकारी :–

शान्ताय गुरुभक्ताय सर्वदा सत्यवादिने ।
आस्तिकाय प्रदातव्यं ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यति ।। 7 ।।
न देयं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय वा ।
दत्ते प्रतिदिनं दुःखं जायते नात्र संशयः ।। 8 ।।

शान्त चित्त वाले, गुरु के प्रति भक्तिभाव से युक्त, सदैव सत्य बोलने वाले, ईश्वर में विश्वास रखने वाले शिष्य को ही यह शास्त्र सिखाना चाहिए, इसी से कल्याण होता है ।

दूसरे के शिष्य, नास्तिक, शठ (कुटिल विचार वाले) शिष्य को इस शास्त्र का ज्ञान देने से सदैव दुःख ही प्राप्त होता है ।

सृष्टिक्रम :–

एकोऽव्यक्तात्मकोविष्णुरनादिःप्रभुरीश्वरः ।
शुद्धसत्त्वो जगत्स्वामी निर्गुणस्त्रिगुणान्वितः ।। 9 ।।
संसारकारकः श्रीमान्निमित्तात्मा प्रतापवान् ।
एकांशेन जगत्सर्व सृजत्यवति लीलया ।। 10 ।।
त्रिपादं तस्य देवस्य ह्यमृतं तत्त्वदर्शिनः ।
विंदन्ति तत्प्रमाणं च सप्रधानं तथैकपात् ।। 11 ।।

एक, अव्यक्त, आत्मा, अनादि, प्रभु, ईश्वर, शुद्ध सत्त्व युक्त, संसार का स्वामी, निर्गुण लेकिन सत्त्व, रजः तम इन तीन गुणों से युक्त, समस्त संसार का रचयिता, परम प्रतापी, श्रीमान् भगवान् विष्णु अपने एक चौथाई अंश से संसार को निर्मित करके, अपनी लीला (इच्छा मात्र से, प्रयत्नपूर्वक नहीं) से इसका पालन पोषण भी करता है । इन्हीं व्यक्ताव्यक्त, समस्तगुण–गणभूषित भगवान् विष्णु के शेष त्रिपाद अंश (तीन चौथाई) अमृत रूप से अव्यक्त परब्रह्म रूप से स्थित है, जिसे तत्त्वदर्शी लोग ही जानते हैं ।

व्यक्ताऽव्यक्तात्मकोविष्णुर्वासुदेवस्तुगीयते ।
यदव्यक्तात्मको विष्णुः शक्तिद्वयसमन्वितः ।। 12 ।।
व्यक्तात्मकस्त्रिभिर्युक्तःकथ्यतेऽनन्तशक्तिमान् ।
सत्त्वप्रधाना श्रीशक्ति भूशक्तिश्च रजोगुणा ।। 13 ।।

शक्तिस्तृतीयायाप्रोक्तानीलाख्याध्वान्तरूपिणी ।
वासुदेवश्चतुर्थो S भूच्छीशक्त्या प्रेरित यदा ।। 14 ।।
वासुदेवश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति मूर्तिधृक् ।
तमःशक्त्यऽन्वितो विष्णुर्देवः सङ्कर्षणाभिधः ।।15 ।।
प्रद्युम्नो रजसा शक्त्यऽनिरुद्धः सत्त्वया युतः ।

उन्हीं भगवान् विष्णु के एक चतुर्थांश व्यक्त रूप से तथा शेष तीन चौथाई अंश अव्यक्त रूप से स्थित रहता है । उन्हीं को वासुदेव भी कहते हैं । अव्यक्त रूप विष्णु की दो शक्तियाँ तथा व्यक्त रूप विष्णु की तीन शक्तियाँ हैं । पुनश्च अनन्तवीर्य या शक्ति से सम्पन्न कहे जाते हैं ।

इन शक्तियों में सत्त्वगुण प्रधान शक्ति स्वयं श्री है, रजोगुण प्रधान शक्ति 'भूशक्ति' है । तमोगुण प्रधाना 'नील शक्ति' कहलाती है ।

इस प्रकार श्रीशक्ति की प्रेरणा से विष्णु या वासुदव के चार रूप हो जाते हैं । वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न व अनिरुदध् इन रूपों को धारण कर लेते हैं । इनमें तमःप्रधाना नीलशक्ति सम्पन्न रहने पर संकर्षण (बलराम), रजोगुणी शक्ति भू से युक्त होने पर प्रद्युम्न (कामदेव या पुराणों में प्रसिद्ध श्रीकृष्ण पुत्र) एवं सत्त्वगुण शक्ति से युक्त होने पर अनिरुद्ध रूप से तीन तथा चतुर्थ स्वयं वासुदेव, इस तरह चतुर्धा मूर्ति सम्पन्न होते हैं ।

इस प्रसंग में विराट, अव्यक्त, परात्पर, निर्गुण रूप भगवान् विष्णु (सर्वव्यापक, सर्वगत) को, संसार का मूल स्रोत कहा गया है । वही विष्णु अपने सम्पूर्ण रूप में चतुर्थांश 25% से समस्त दृश्यमान जगत् का निर्माणादि करके शेष त्रिपाद रूप में अमृत या अजर, अमर, निर्विकार रहते हैं । पुरुष सूक्त में इस बात को स्पष्ट कहा है–

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यमृतं दिवि ।' (यजुर्वेद)

शेष विषय-यहाँ पर 'लोकवस्तु लीलाकैवल्यम्' इत्यादि ब्रह्मसूत्रों के आधार पर बताया गया है । व्यवहारतः 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' के कथनानुसार जल ही सर्वप्रथम सृष्टि है । समस्त संसार (पृथ्वी) का तीन चौथाई भाग नामरूपादि से रहित निरुपाधि जल रूप व शेष एक चौथाई में भूगोल विविध रूपों से दृश्य होकर विद्यमान ही है । 'अमृत' शब्द का अर्थ जल भी है । 'पयःकीलालममृतं' इत्यादि अमरकोष में कहा ही गया है । पुनश्च नारायण की व्युत्पत्ति भी 'नारो आप इति प्रोक्तः' के मतानुसार मूलतः जलरूप होकर जल में ही निवास (अयन) है जिनका, वह नारायण ही सृष्टि का मूल हेतु है । वे ही षड्विध ऐश्वर्य रूप लक्ष्मी के पति हैं । अव्यक्त रूप से विष्णु या वासुदेव की दो शक्तियाँ कही ही गई हैं–

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'

सर्वव्यापक होने से विष्णु अर्थात् 'विशति सर्वभूतानि विशन्ति सर्वभूतानि अत्र' उसी से उत्पन्न होकर उसी में समाना है, अतः विष्णु नाम सार्थक है। मत्स्य पुराण में पूर्वोक्त अन्य नामों का हेतु भी दिया गया है। सभी के निवास स्थान होने के कारण वासुदेव हैं–

वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ।
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तदुच्यसे ।।
संकर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ।
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः ।।
प्रत्यूहेन न तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ।
प्रतिद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यते ।
निरोधो विद्यते यस्मात् न ते भूतेषु कश्चन ।
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।। (मत्स्य पुराण)

अतः भूशक्ति या रजोगुण से युक्त प्रद्युम्न स्वयं स्थितिकारक, पालनकर्त्ता हैं। कल्पान्त में सर्वप्राणियों को संकर्षण करने के कारण तमोगुण युक्त भगवान् संहारकर्त्ता हैं। अतः वासुदेव विष्णु, संकर्षण प्रभृति नाम पुरुषोत्तम, पुरुष रूप से वर्णित आदि पुरुष के वाचक हैं।

महान् संकर्षणाज्जातः प्रद्युम्नादहंकृतिः ।। 16 ।।
अनिरुद्धात् स्वयं जातो ब्रह्माहंकारमूर्तिधृक् ।
सर्वेषु सर्वशक्तिश्च स्वशक्त्याऽधिकया युतः ।। 17 ।।

सांख्य मत से अब सृष्टितत्त्व बताते हैं। संकर्षण से महत्तत्त्व (बुद्धि) प्रद्युम्न से (अहंकार) तथा अनिरुद्ध से स्वयं ब्रह्म का शरीर उत्पन्न हुआ। इन सब में सभी शक्तियाँ रहती हैं, लेकिन अपनी शक्ति प्रधान रूप से तथा अन्य शक्तियाँ गौण रूप से रहती हैं।

अहंकारस्त्रिधा भूत्वा सर्वमेतदविस्तरात् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेदहंकृतिः ।। 18 ।।
देवावैकारिकाज्जातास्तैजसादिन्द्रियाणि च ।
तामसाच्चैव भूतानि खादीनि स्व–स्वशक्तिभिः ।। 19 ।।

यही अहंकार तीन रूपों (सात्विक, राजस व तामस) में विभक्त होकर स्थित होता है। सात्त्विक अहंकार से देवता, तामसिक अहंकार से सभी प्राणी आकाशादि पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश) एवं तेजस् या राजस् अहंकार से सभी इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई।

श्रीशक्त्या सहितो विष्णुः सदा पाति जगत्त्रयम् ।

भूशक्त्या सृजते ब्रह्मा नीलशक्त्या शिवोऽत्ति हि ।। 20 ।।

इस प्रकार सब प्राणियों का पालन करते समय एक ही पुरुषोत्तम वासुदेव विष्णु नाम से श्रीशक्ति युक्त होते हैं। भू शक्ति से युक्त ब्रह्मा संसार का निर्माण करते हैं तथा नीलशक्ति से युक्त होकर शिव संहारक कहलाते हैं। वास्तव में वह एक ही है।

सर्वेषु चैव जीवेषु परमात्मा विराजते ।

सर्वं हि तदिदं ब्रह्मन् ! स्थितं हि परमात्मनि ।। 21 ।।

सर्वेषु चैव जीवेषु स्थितं ह्यंशद्वयं क्वचित् ।

जीवांशो ह्यधिकस्तद्वत् परमात्मांशकः किल ।। 22 ।।

सूर्यादयो ग्रहाः सर्वे ब्रह्मकामद्विपादयः ।

एते चान्ये च बहवः परमात्मांशकाधिकाः ।। 23 ।।

शक्तयश्च तथैतेषामधिकांशाः श्रियादयः ।

स्वस्वशक्तिषु चान्यासु ज्ञेया जीवांशकाधिकाः ।। 24 ।।

हे विप्र मैत्रेय ! सब जीवों में परमात्मा विद्यमान है। समस्त चराचर जगत् भी परमात्मा में ही स्थित है। सब जीवो में से किसी किसी में जीवांश अर्थात् मायोपहित चैतन्य अथवा अज्ञानांश अधिक होता है। वे सब साधारण पुरुष हैं तथा किन्हीं में परमात्मांश अर्थात् शुद्ध, बुद्ध, सत्त्व, स्वयं प्रकाश अंश की अधिकता होती है।

सूर्य आदि ग्रहों में, ब्रह्मा व शिवादि में भी परमात्मांश अधिक रहता है। इसी प्रकार से और भी बहुत से परमात्मांश प्रधान अवतार हुए हैं। इसी तरह इनकी शक्तियाँ भी तत्तत् श्री आदि के अधिकांश से युक्त होती हैं। इसके अतिरिक्त देवों व मानुषादि जीवों में जीवांश अधिक होता है।

आशय यह है कि ज्ञान या परा विद्या की अधिकता वाले प्राणी अवतार श्रेणी में एवं अविद्या या दार्शनिक अज्ञान से अधिकतया युक्त प्राणी साधारण श्रेणी में आते हैं। पुनश्च 'सर्व विष्णुमयं जगत्' कहने से सभी में परमात्मा का निवास रहने से सभी अवतार न होकर ईश्वरीय गुणों की युक्तता के आधार पर प्राधान्याप्राधान्येन अवतारादि निर्देश करना योग्य है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां सृष्टिक्रम कथनाध्यायः प्रथमः ।। 1 ।।

2

। । अथ अवतारकथनाध्यायः । ।

रामकृष्णादयो ये ये ह्यवतारा रमापतेः ।

तेऽपि जीवांशसंयुक्ताः किं वा ब्रूहि मुनीश्वर ! । । 1 । ।

मैत्रेय ने पूछा–भगवन् ! मुनिराज ! राम, कृष्ण आदि का शास्त्रों में विष्णु के अवतार रूप में वर्णन हुआ है, क्या आप उन्हें भी जीवांश युक्त समझते हैं ?

रामः कृष्णश्च भो विप्र ! नृसिंहः सूकरस्तथा ।

एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः । । 2 । ।

पराशर बोले–राम, कृष्ण, वराह व नृसिंह रूप में पूर्णावतार अर्थात् सम्पूर्ण परमात्मा से युक्त हैं, जबकि इनके अतिरिक्त शेष प्रसिद्ध अवतारों में जीवांश भी विद्यमान हैं ।

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः ।

जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः । । 3 । ।

दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलवृद्धये ।

धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहाज्जाताः शुभाः क्रमात् । । 4 । ।

यद्यपि अजन्मा (अज) भगवान् वासुदेव के अनेक अवतार हैं, लेकिन सभी प्राणियों को कर्मफल देने वाले ग्रहरूप अवतार मुख्य हैं । दैत्यों के बल का नाश करने के लिए, देवों के बल को बढ़ाने के लिए, धर्म संस्थापनार्थ ग्रहों से रामादि मुख्य अवतार हुए हैं ।

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।

नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुधः सोमसुतस्य च । । 5 । ।

वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च ।

कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः । । 6 । ।

केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः ।

परात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेचराभिधाः । । 7 । ।

सूर्य से रामावतार, चन्द्रमा से कृष्णावतार, मंगल से नरसिंहावतार, बुध से बुद्धावतार, गुरु से वामनावतार, शुक्र से परशुरामावतार, शनि से कूर्मावतार, राहु से वराहावतार, केतु से मत्स्यवातार हुए हैं । अन्य अवतार

भी ग्रहों से ही हुए हैं तथा उनमें परमात्मांश की अधिकता है। परमात्मांश के आधिक्य के कारण ही इनका नाम 'खेचर' आकाशचारी मुख्य ग्रहों के अतिरिक्त अन्य नक्षत्र, तारे उपग्रह आदि पड़ा है।

जीवांशो ह्यधिको येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः ।

सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृताः ।। 8 ।।

रामकृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै ।

तत्रैव ते विलीयन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा ।। 9 ।।

जीवांशनिःसृतास्तेषां तेभ्यो जाता नरादयः ।

तेऽपि तत्रैव लीयन्ते तेऽव्यक्ते समयन्ति हि ।। 10 ।।

इदं ते कथितं विप्र ! सर्वं यस्मिन् भवेदिति ।

भूतान्यपि भविष्यन्ति तत्तज्जानन्ति तद्विदः ।। 11 ।।

विना तज्ज्यौतिषं नान्योज्ञातुं शक्नोति कर्हिचित् ।

तस्मादवश्यमध्येयं ब्राह्मणैश्च विशेषतः ।। 12 ।।

यो नरः शास्त्रमज्ञात्वा ज्यौतिषं खलु निन्दति ।

रौरवं नरकं भुक्त्वा चान्धत्वं चान्यजन्मनि ।। 13 ।।

जिनमें जीवांश की अधिकता होती है, वे 'जीव' कहलाते हैं। सूर्यादि ग्रहों के अधिकांश से रामकृष्णादि अवतार जिस प्रकार हुए हैं, उसी तरह से ग्रहों के अल्पांश से मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। जीव या परमात्मभूत सभी अन्ततोगत्वा अपना कार्य समाप्त कर पुनः उन्हीं ग्रहेन्द्रों में समा जाते हैं। प्रलय काल में समस्त ग्रहादि भी अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। अव्यक्त से उत्पन्न इस सृष्टि या सर्ग का रहस्य हमने तुम्हें बताया है, इसे जान लेने से भूत व भविष्य का ज्ञान सुकर है।

प्रलय के विषय में परमात्मभूत अवतार तो स्वयं ही जानते हैं, लेकिन शेष जीवांश प्रधान मनुष्यादि ज्योतिषशास्त्र की सहायता के बिना किसी भी प्रकार से भूत या भविष्यत् संसार के परिणाम नहीं जान सकते।

इसीलिए सब को (विशेषतया ब्राह्मणों को) ज्योतिशास्त्र का विधिवत् अध्ययन करना चाहिए।

जो मनुष्य शास्त्र को बिना जाने व पढ़े, इसकी निन्दा करता है, वह रोग व नरक भोगकर पुनः जन्म होने पर अन्धा होता है।

राम, कृष्ण, नृसिंह व व वराह को सम्पूर्ण अवतार कहकर तथा इनका सम्बन्ध सूर्य, चन्द्रमा, मंगल व राहु से जोड़कर फलित में विशेषतया अस्तित्व, अरिष्ट या मृत्यु में इन ग्रहों का विचार करने का निर्देश किया गया है। अव्यक्त या 'विष्णु' स्वयं 12 आदित्यों में से एक हैं। आदित्य

अर्थात् अदिति के पुत्र (देवता) व दैत्य अर्थात् दिति पुत्र राक्षस या दैत्य हैं। देव या आदित्य प्रकाश रूप एवं दैत्य अंधकार या छाया रूप हैं। अतः दैत्यों (तम) के बलनाश के लिए, देवताओं के बलवर्धन के लिए इत्यादि प्रयोजन ग्रहावतारों का कहना ठीक ही है। अव्यक्त या सूर्य रूप ग्रहेन्द्र से सारे ग्रह प्रकाशित होते हैं, इसका संकेत भी यहाँ किया गया है। इस तरह महर्षि ने यहाँ कर्मफल देने वाले, सर्व प्राणियों के नियामक होने के कारण नौ ग्रह माने हैं। स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष में प्रयुक्त 'ग्रह' शब्द विशिष्ट अर्थ रखता है। प्राणियों को फल देने के लिए ग्रहण करने वाले, ग्रह कहलाते हैं। अतः समस्त संसार मुख्यतया इन 9 ग्रहों के अधीन है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायामवतारकथनाध्यायो द्वितीयः ।।2।।

3

।।अथ ग्रहगुणस्वरूपाध्यायः ।।

कथितं भवता प्रेम्णा ग्रहावतारणं मुने !।
तेषां गुणस्वरूपाद्यं कृपया कथ्यतां पुनः ।।1।।

मैत्रेय बोले–हे मुने ! आपने प्रेमपूर्वक मुझे ग्रहों के अवतारों के विषय में बताया है, कृपया अब ग्रहों के गुणों व स्वरूपों के विषय में कहें।

नक्षत्र परिभाषा :–

शृणु विप्र ! प्रवक्ष्यामि भग्रहाणां परिस्थितिम्।
आकाशे यानि दृश्यन्ते ज्योतिर्बिम्बान्यनेकशः ।।2।।
तेषु नक्षत्रसंज्ञानि ग्रहसंज्ञानि कानिचित्।
तानि नक्षत्रनामानि स्थिरस्थानानि यानि वै ।।3।।

पराशर बोले–विप्रवर ! अब मैं आकाश में नक्षत्रों व ग्रहों की स्थितियों को बताता हूं। आकाश में जितने ज्योतिः बिम्ब (तारे आदि) दिखते हैं उनमें से कुछ का नाम नक्षत्र है तथा कुछ को ग्रह कहते हैं।

जिनके स्थान सदैव स्थिर हैं अर्थात् जिन तारों में परस्पर अन्तर सदैव समान रहता है, उन्हें नक्षत्र कहते हैं।

ग्रह व लग्न परिभाषा :–

गच्छन्तो भानि गृह्णन्ति सततं ये तु ते ग्रहाः।
भचक्रस्य नगाश्व्यंशा अश्विन्यादि–समाह्वयाः ।।4।।
तद्द्वादशविभागास्तु तुल्या मेषादि संज्ञकाः।
प्रसिद्धा राशयः सन्ति ग्रहास्त्वर्कादिसंज्ञकाः ।।5।।

राशीनामुदयो लग्नं तद्वशादेव जन्मिनाम् ।

ग्रहयोग–वियोगाभ्यां फलं चिन्त्यं शुभाशुभम् ।। 6 ।।

जो ज्योतिः पिण्ड आकाश में सदैव परिक्रमण करते हुए उक्त तारों या नक्षत्रों को पार करते हुए जाते हैं, वे ग्रह कहलाते हैं ।

भचक्र अर्थात् नक्षत्र चक्र या राशि चक्र का 27 वाँ भाग $\frac{360^0}{27} = 13^0.20'$ एक नक्षत्र है । उन भागों का नाम क्रमशः अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र हैं ।

यदि उक्त भचक्र के समान 12 भाग कर दिए जाएँ अर्थात् 30^0 के तुल्य एक भाग क्रमशः मेषादि राशियाँ कहलाती हैं ।

सूर्यादि नौ ग्रह प्रसिद्ध ही हैं । राशियों का उदय होना ही लग्न है । उसी उदय लग्न में स्थित ग्रह स्थिति (योगायोग) का विचार करके मनुष्यों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए ।

संज्ञा नक्षत्रवृन्दानां ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः ।

एतच्छास्त्रानुसारेण राशि–खेटफलं ब्रुवे ।। 7 ।।

उक्त अश्विनी आदि नक्षत्रों के नाम अन्य प्रसिद्ध प्रारम्भिक ग्रन्थों से जान लेने चाहिएं । पुनश्च नक्षत्रों की चर, स्थिर, उग्र आदि संज्ञाएं भी शास्त्रान्तर से जानना ठीक है । अब राशि व ग्रहों की स्थिति से फल कथन बता रहा हूँ ।

दृग्गणित से ग्रह शुद्धि–

यस्मिन् काले यतः खेटा यान्ति दृग्गणितैक्यताम् ।

तत एव स्फुटाः कार्याः दिक्कालौ स्फुटौ विदा ।। 8 ।।

भूकेन्द्रदृग्भवैः साध्यं लग्नं राश्युदयैः स्फुटम् ।

अदृष्टफलसिद्ध्यर्थ भबिम्बीयै बुधैः सदा ।। 9 ।।

लग्नं दृष्टफलार्थ तु स्वस्थानीयैर्भवृत्तजैः ।

अथादौ वच्मि खेटानां जातिरूपगुणानहम् ।। 10 ।।

जिस पद्धति, करण या सिद्धान्त से दृग्गणितैक्य युक्त वेध सिद्ध ग्रह प्राप्त हो, उसी का अवलम्बन करना चाहिए । उसी कारण से स्पष्ट दिशा व स्पष्ट काल का साधन करना चाहिए ।

अदृष्ट फल अर्थात् कुण्डली से फलादेशार्थ स्थानीय पूर्वक्षितिज पर उदित राशि को लग्न न मानकर भू केन्द्रीय अक्षांशों से साधित लग्न से फलादेश करना चाहिए ।

दृष्टपदार्थ अर्थात् ग्रहणादि के ज्ञानार्थ ही स्थानीय उदय लग्न को लग्न मानना चाहिए ।

इसके बाद अब मैं प्रारम्भ में ग्रहों की जाति, वर्ण, रूप, गुणादि का स्पष्टीकरण करता हूँ।

होराफल कहने में ग्रहों का वेधसिद्ध होना अर्थात् गणित द्वारा साधित ग्रह स्पष्ट एवं वास्तविक आकाशीय ग्रह स्थिति में समानता दिखाना आवश्यक है, इसमें कोई विवाद नहीं है। आचार्यो व ऋषियों ने समय समय पर गणित व प्रत्यक्ष दर्शन में समन्वय स्थापित करने के लिए बीज संस्कार (CORRECTIONS) बताए ही हैं, लेकिन पहले 'राशीनामुदयो लग्नम्' कहकर बताया था कि राशि चक्र की जो राशि अभीष्ट समय में पूर्वीय क्षितिज पर दिखाई दे, वही राशि लग्न होता है। अब यह उदय क्षितिज सर्वत्र पृथक् पृथक् देश भेद से भिन्न हुआ करता है। जिस प्रकार विभिन्न अक्षांशों पर सूर्योदय काल भिन्न होता है, तद्वत् राशियों का उदय भी भिन्न समय पर हुआ करता है। अतः भूमध्य के अक्षांशों पर लग्न साधित करके भूमण्डल पर कहीं भी उत्पन्न सभी व्यक्तियों का फलादेश करना चाहिए, यह बात पं० सीताराम झा जी के संस्करण में ही अधिक है। हमारे विचार से स्थानीय उदय लग्न ही लग्न है, इसमें कोई विवाद नहीं है। यह क्लिष्ट कल्पना पं० झा जी की निजी उड़ान है, जिसका संशोधन वे बाद में स्वयं अप्रत्यक्ष रूप से कर चुके थे। कमलाकर आदि आचार्यो का प्रमाण देकर जो बात झा जी ने सिद्ध करने का प्रयत्न किया था, वह अव्यावहारिक व शास्त्रविरुद्ध ही है। इस विषय में हम 'उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर' में भी लिख चुके हैं। इस प्रसंग के ये श्लोक झा जी के स्वनिर्मित प्रतीत होते हैं।

ग्रहों के नाम –

अथ खेटा रविश्चन्द्रो मंगलश्च बुधस्तथा ।
गुरुः शुक्रः शनी राहुः केतुश्चैते यथाक्रमम् ।। 11 ।।
तत्रार्क–शनि–भूपुत्राः क्षीणेन्दु–राहु–केतवः ।
क्रूराः, शेषग्रहा सौम्याः, क्रूरः क्रूर–युतो बुधः ।।12 ।।

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु व केतु ये क्रमशः 9 ग्रह होते हैं। इनमें से सूर्य, शनि व मंगल तथा क्षीण चन्द्र, राहु एवं केतु पापग्रह या क्रूर ग्रह हैं तथा शेष ग्रह गुरु, शुक्र एवं वर्धमान चन्द्रमा तथा पाप संग रहित बुध शुभ हैं। पापग्रह के साथ स्थित रहने पर बुध क्रूर ही होता है।

ग्रहों का आत्मादि विभाग :–

सर्वात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः ।
सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणीप्रदायकः ।। 13 ।।

देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः ।

ऋषिभिः प्राक्तनैः प्रोक्तश्छायासूनुश्च दुःखदः ।। 14 ।।

रविचन्द्रौ तु राजानौ नेता ज्ञेयो धरात्मजः ।

बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ।। 15 ।।

प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्भानुपुच्छकौ ।

एवं क्रमेण वै विप्र ! सूर्यादीन् प्रविचिन्तयेत् ।। 16 ।।

सूर्य समस्त चराचर जगत् की आत्मा एवं चन्द्रमा मन का प्रतिनिधि है । मंगल सत्त्व (पराक्रम या मनोबल), बुध वाणी देने वाला है ।

बृहस्पति ज्ञान व सुख का प्रतिनिधि है तथा शुक्र वीर्यदाता, काम–सुख का प्रतिनिधि है । प्राचीन ऋषियों ने शनि को दुःख का दाता माना है । इनमें भी सूर्य व चन्द्रमा राजा, मंगल सेनापति, बुध राजकुमार, गुरु व शुक्र मन्त्री तथा शनि प्रेष्टा (दास) है । राहु व केतु सेना के प्रतिनिधि हैं । इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों के बलाबल से फल–योग्यता का विचार करना चाहिए ।

ग्रहों का वर्ण :–

रक्तश्यामो दिवाधीशो गौरगात्रो निशाकरः ।

नात्युच्चांगः कुजो रक्तो दूर्वाश्यामो बुधस्तथा ।। 17 ।।

गौरगात्रो गुरुर्ज्ञेयः शुक्रः श्यावस्तथैव च ।

कृष्णदेहो रवेः पुत्रो ज्ञायते द्विजसत्तम ! ।। 18 ।।

सूर्य का रंग लाल मिश्रित साँवला अर्थात् लाख के समान है । चन्द्रमा गौरवर्ण, मंगल मध्यम कद वाला एवं लाल रंग से युक्त है । बुध का रंग घास के समान साँवलापन लिए हुए हरी रंगत से युक्त है । गुरु गौर वर्ण तथा शुक्र का चितकबरा वर्ण है । सूर्यपुत्र शनि काले रंग का है ।

ग्रहों के देवता :–

वह्न्यम्बुशिखिजा विष्णुविडौजःशचिका द्विज ! ।

सूर्यादीनां खगानां च देवा ज्ञेयाः क्रमेण च ।। 19 ।।

अग्नि, जल कार्त्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्मा ये सात क्रमशः सूर्यादि सात ग्रहों के देवता हैं ।

ग्रहों का पुं–स्त्री–नपुंसकत्व :–

क्लीबौ द्वौ सौम्यसौरी च युवतीन्दुभृगू द्विज ! ।

नराः शेषाश्च विज्ञेया भानुर्भौमो गुरुस्तथा ।। 20 ।।

अग्नि भूमिनभस्तोयवायवः क्रमतो द्विज ! ।

भौमादीनां ग्रहाणां च तत्त्वानीति यथाक्रमम् । । 21 । ।

बुध व शनि नपुंसक, चन्द्रमा व शुक्र युवती हैं । शेष सूर्य, मंगल, गुरु पुरुष ग्रह हैं ।

अग्नि, भूमि, आकाश, जल, वायु ये क्रमशः मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के तत्त्व (पंचतत्त्व) हैं ।

यहाँ सूर्य व चन्द्रमा के क्रमशः अग्नि व जल तत्त्व समझने योग्य हैं । पिछले श्लोक में महर्षि ने 'वह्न्यम्बु' कहकर इसे स्पष्ट किया है ।

ग्रहों के वर्ण व सत्त्वादि गुण :–

गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज ! ।

शशिसौम्यौ वैश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तम ! । । 22 । ।

जीवसूर्येन्दवः सत्त्वं बुधशुक्रौ रजस्तथा ।

सूर्यपुत्रधरापुत्रौ तमःप्रकृतिकौ द्विज ! । । 23 । ।

गुरु व शुक्र ब्राह्मण, मंगल व सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा व बुध वैश्य, एवं शनि शूद्र वर्ण है ।

गुरु, सूर्य, चन्द्रमा सत्त्वगुणी, बुध व शुक्र रजोगुणी तथा शनि मंगल तमोगुणी ग्रह हैं ।

यहाँ शुक्र को मध्यम श्रेणी ब्राह्मण, गुरु को उत्तम श्रोत्रीय ब्राह्मण, सूर्य को राजपदाधिष्ठित क्षत्रिय, मंगल को मध्यम क्षत्रिय, चन्द्रमा को उदार वैश्य, बुध को पक्का व्यापारी वैश्य समझना चाहिए । शनि, राहु व केतु सभी शूद्र, अन्त्यज तथा संकरवर्ण के अधिपति हैं ।

ग्रहों का स्वरूप :–

मधुपिंगलदृक्सूर्यश्चतुरस्रः शुचिर्द्विज ! ।

पित्तप्रकृतिको धीमान् पुमानल्पकचो द्विज ! । । 24 । ।

बहुवातकफः प्राज्ञश्चन्द्रोवृत्ततनुः द्विज ! ।

शुभदृङ्मधुवाक्यश्च चंचलो मदनातुरः । । 25 । ।

क्रूरो रक्तेक्षणो भौमश्चपलो दारमूर्तिकः ।

पित्तप्रकृतिः क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विज ! । । 26 । ।

वपुःश्रेठः श्लिष्टवाक् च ह्यतिहास्यरुचिर्बुधः ।

पित्तवान् कफवान् विप्र ! मारुतप्रकृतिस्तथा । । 27 । ।

सूर्य शहद के समान भूरी आँखों वाला, चौकोर अर्थात् समान लम्बाई–चौड़ाई युक्त शरीर वाला, पवित्राचरण करने वाला, पित्त प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान्, पुरुष तथा कम बालों वाला है।

चन्द्रमा बहुत वात कफ वाला, बुद्धिमान, चंचल स्वभाव, कामातुर, गोलमटोल शरीर वाला, शुभदृष्टि, मधुर वाणी बोलने वाला है।

मंगल क्रूर स्वभाव वाला, आक्रामक, लाल आँखों वाला, उतावला, उदार स्वभाव या आकार वाला, पित्तप्रकृति, क्रोधी, पतली कमर वाला होता है।

बुध सुन्दर आकर्षक शरीर वाला, गूढ अर्थ से युक्त वाक्य बोलने वाला, हास्य को समझने वाला तथा स्वयं हास्यप्रिय वात, पित्त व कफ मिश्रित प्रकृति वाला होता है।

बृहद्गात्रो गुरुश्चैव पिंगलो मूर्द्धजेक्षणैः ।
कफप्रकृतिको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ।। 28 ।।
सुखी कान्तवपुः श्रेष्ठः सुनेत्रश्च भृगोः सुतः ।।
काव्यकर्ता कफाधिक्योऽनिलात्मा वक्रमूर्धजः ।।29 ।।
कृशदीर्घतनुः सौरिः पिंगदृगनिलात्मकः ।
स्थूलदन्तोऽलसः पङ्गुः खररोमकचो द्विज ! ।। 30 ।।
धूम्राकारो नीलतनुर्वनस्थोऽपि भयंकरः ।
वातप्रकृतिको धीमान् स्वर्भानुस्तत्समः शिखी ।। 31 ।।

बृहस्पति बड़े लम्बे चौड़े शरीर वाला, भूरे बालों वाला, भूरी आँखों वाला, कफ प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान् व शास्त्रों को जानने वाला होता हे।

शुक्र सुन्दर शरीर वाला, सुन्दर आँखों वाला, सुखी, श्रेष्ठ, कवित्त्व शक्ति युक्त, कफ प्रधान प्रकृति, घुँघराले बालों वाला, वातयुक्त शरीर वाला होता है। शनि कफ प्रकृति, लम्बा व पतला शरीर, विकृत दृष्टि वाला, वायुप्रधान, मोटे दाँतों वाला, आलसी, शरीर संचालन में विकार युक्त, मोटे रूखे बालों व रोमों वाला होता है।

धुएँ के समान साँवले शरीर वाला, वनवासी, भयंकर आकार–प्रकार वाला, वायु प्रधान प्रकृति, बुद्धिमान्, यह राहु का स्वरूप है। केतु का स्वरूप भी राहु के समान ही है।

जन्म समय में सर्वबली ग्रह या लग्नेश, लग्न नवांशेश चन्द्रमा के शरीर आदि से मनुष्य का शील, आकार व स्वभाव का निर्णय करते समय उक्त बातों का प्रयोग करना चाहिए।

ग्रहों की धातु, स्थान, रस आदि :–

अस्थि रक्तस्तथा मज्जा त्वग् वसा वीर्यमेव च ।
स्नायुरेषामधीशाश्च क्रमात् सूर्यादयो द्विज ! । । 32 । ।
देवालयजलं वह्निक्रीडादीनां तथैव च ।
कोशशय्योत्कराणां तु नाथाः सूर्यादयः क्रमात् । । 33 । ।
अयनक्षणवारर्तुमासपक्षसमा द्विज ! ।
सूर्यादीनां क्रमाज्ज्ञेया निर्विशंकं द्विजोत्तम ! । । 34 । ।
कटु–क्षार–तिक्त–मिश्र--मधुराम्ल–कषायकाः ।
क्रमेण सर्वे विज्ञेयाः सूर्यादीनां रसा इति । । 35 । ।

हड्डी, खून, मज्जा, त्वचा, चर्बी, वीर्य, स्नायु ये सूर्यादि ग्रहों की सात धातुएँ हैं ।

देवालय, जलस्थान, अग्निस्थान, क्रीड़ा स्थान, कोषागार, शयनागार, एवं उत्कर (कूड़ा–करकट डालने का स्थान) मैला स्थान ये क्रमशः सूर्य से शनि पर्यन्त ग्रहों के स्थान हैं ।

अयन (छह मास) क्षण, वार (एक दिन–रात) ऋतु (दो मास) पक्ष (पन्द्रह दिन) एवं वर्ष ये सूर्यादि ग्रहों के कालखण्ड हैं ।

कटु, नमकीन, तीखा मसालेदार, मिलाजुला, अर्थात् खटटा मीठा, कषैला ये सूर्यादि ग्रहों के रस हैं ।

बलवान् ग्रह से शरीर की सम्बन्धित धातु पुष्ट होती है तथा निर्बल से धातु निर्बल ही रहती है । ग्रहों के स्थान से प्रसव स्थान, प्रश्न में सम्बन्धित स्थान समझना चाहिए ।

ग्रहों के काल का प्रयोग प्रश्न समय में कार्य सिद्धि की अवधि जानने के लिए होता है । लग्नेश नवांश या लग्नगत नवांशेश से अयन, क्षणादि काल जानना योग्य है ।

ग्रहों का दिग्बल, काल, चेष्टा निसर्ग बल :–

बुधेज्यौ बलिनौ पूर्वे रवि–भौमौ च दक्षिणे ।
पश्चिमे सूर्यपुत्रश्च सित–चन्द्रौ तथोत्तरे । । 36 । ।
निशायां बलिनश्चन्द्र–कुज–सौरा भवन्ति हि ।
सर्वदा ज्ञो बली ज्ञेयो दिने शेषा द्विजोत्तम ! । । 37 । ।
कृष्णे च बलिनः क्रूराः सौम्या वीर्ययुताः सिते ।
सौम्यायने सौम्यखेटो बली याम्यायनेऽपरः । । 38 । ।

वर्षमासाहहोराणां पतयो बलिनस्तथा ।

शमंबुगुशुचंराद्या वृद्धितो वीर्यवत्तराः ।। 39 ।।

बुध व गुरु पूर्व दिशा या लग्न में, सूर्य मंगल दक्षिण दिशा या दशम राशि भाव में, शनि पश्चिम दिशा या सप्तम लग्न में, शुक्र व चन्द्रमा उत्तर दिशा या चतुर्थ लग्न में बलवान् होते हैं । यह ग्रहों का दिग्बल है ।

चन्द्रमा, मंगल व शनि रात में बलवान् अर्थात् रात्रि बली होते हैं । बुध सदैव बलवान् है तथा शेष सूर्य, गुरु, शुक्र दिन में बली होते हैं ।

सभी क्रूर ग्रह कृष्ण पक्ष में तथा शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में बली होते हैं । शुभ ग्रह उत्तरायण में एवं क्रूर ग्रह दक्षिणायन में बली होते हैं ।

वर्षेश सारे वर्ष में, मासेश सारे मास में, वारेश अपने वार में, होरेश अपनी होरा में बलवान् होता है । यह काल बल है ।

शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा व सूर्य क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक निसर्गबली होते हैं । यह निसर्गबल है ।

ग्रहों के वृक्ष :–

सूर्यो जनयति स्थूलान् दुर्भगान् सूर्यपुत्रकः ।

क्षीरोपेतांश्तथा चन्द्रः कटुकाद्यान् धरासुतः ।। 40 ।।

पुष्पवृक्षं भृगोः पुत्रो गुरुज्ञौ सफलाफलौ ।

नीरसान् सूर्यपुत्रश्च एवं ज्ञेयाः खगा द्विज ! ।। 41 ।।

सूर्य स्थूल अर्थात् सारयुक्त मजबूत इमारती उपयोग वाले वृक्षों को, शनि दूषित व निन्दित, देखने में खराब लगने वाले, मन को प्रसन्नता न देने वाले वृक्षों को, चन्द्रमा दुग्धयुक्त वृक्षों को अर्थात् जिनके भीतर जल, रस आदि रहता हो जैसे नारियल, रबर, वट आदि को तथा मंगल कड़ुवे नीम आदि अथवा विशेषतया तीखे यथा सरसों, राई, मिर्च आदि वृक्षों को उत्पन्न करता है । अर्थात् इन वृक्षों पर इन ग्रहों का आधिपत्य रहता है ।

शुक्र फूलदार वृक्षों को, गुरु फलदार वृक्षों को, बुध फलरहित लेकिन शुभ चन्दनादि वृक्षों को, शनि सूखे रसरहित वृक्षों को उत्पन्न करता है ।

राहु केतु के विषय में ध्यातव्य है कि ये जैसे ग्रह के साथ स्थित हों या जिस ग्रह की राशि में हों, उसी ग्रह के वृक्षों के अधिपति होते हैं । अथवा जहरीले, अभक्ष्य, निन्दित फल वाले वृक्षों के अधिपति राहु केतु हैं ।

कहा गया है––

विषवृक्षाण्यभोज्यानि दुर्भगानि फलानि च ।
उपेतग्रहतुल्यानि राहोरौदि्भदमीरितम् । ।

ग्रहों के वस्त्रादि :–

शिखि स्वर्भानुमन्दानां वल्मीकं स्थानमुच्यते ।
चित्रकन्था फणीन्द्रस्य केतोश्छिद्रयुतो द्विज । । 42 । ।
सीसं राहोर्नीलमणिः केतोर्ज्ञेयो द्विजोत्तम ।
गुरोः पीताम्बरं विप्र ! भृगोः क्षौमं तथैव च । । 43 । ।
रक्तक्षौमं भास्करस्य इन्दोः क्षौमं सितं द्विज ।
बुधस्य कृष्णक्षौमं तु रक्तवस्त्रं कुजस्य च । ।
वस्त्रं चित्रं शनेर्विप्र ! पट्टवस्त्रं तथैव च । । 44 । ।

शनि, राहु व केतु का स्थान वल्मीक अर्थात्, बिल, बाँबी, गूढ़ स्थान, भूमिगत स्थान, गुफा, गड्ढा आदि समझना चाहिए ।

राहु का वस्त्र अनेक रंगों से युक्त कन्था (गुदड़ी), केतु का वस्त्र छेदयुक्त होता है ।

राहु की धातु सीसा, केतु की नीलमणि, नीला पत्थर, फिरोजा, कटैला आदि हैं ।

गुरु का वस्त्र पीला, शुक्र का रेशमी कोमल वस्त्र, सूर्य का लाल व रेशमी वस्त्र, चन्द्रमा का सफेद या उज्ज्वल रेशमी वस्त्र, बुध का काला या नीला रेशम, मंगल का साधारण लाल वस्त्र, शनि का मोटा रेशम अथवा चितकबरा कपड़ा होता है ।

मूल में 'क्षौम' शब्द का प्रयोग किया गया है । इसका अर्थ रेशमी कपड़ा अथवा बारीक, मुलायम, चमकीला, महीन मलमल आदि भी हो सकता है ।

ग्रहों की ऋतुएँ :–

भगोर्ऋतुवसन्तश्च कुजभान्वोश्च ग्रीष्मकः ।
चन्द्रस्य वर्षा विज्ञेया शरच्चैव तथा विदः । । 45 । ।
हेमन्तोऽपिगुरोर्ज्ञेयः शनेस्तु शिशिरो द्विज ! ।
अष्टौ सामाश्च स्वर्भानोः केतोर्मासत्रयं द्विज ! । । 46 । ।

शुक्र की वसन्त ऋतु, मंगल व सूर्य की ग्रीष्म, चन्द्रमा की वर्षा, बुध की शरत्, गुरु की हेमन्त व शनि की शिशिर ऋतु होती है। राहु वर्ष में 8 मास व केतु तीन मास तक प्रभावी रहता है।

सूर्यादि ग्रहों की ऋतुएँ उक्त प्रकार से ही प्रसिद्ध हैं, लेकिन राहु केतु वर्ष के कौन से मास से प्रभावी होते हैं, यह स्पष्ट नहीं है। पुनश्च 8 व 3 कुल 11 मास हुए तब बारहवाँ महीना कहाँ लगेगा ? इत्यादि

ग्रहों की धातु मूल जीव संज्ञा :–

राह्वार पंगुचन्द्राश्च विज्ञेया धातुखेचराः।
मूलग्रहौ सूर्यशुक्रौ अपरा जीवसंज्ञकाः।। 47।।
ग्रहेषु मन्दो वृद्धोऽस्ति आयुर्वृद्धिप्रदायकः।
नैसर्गिके बहुसमान् ददाति द्विजसत्तम।। 48।।

राहु, मंगल, शनि व चन्द्र ये धातुसंज्ञक ग्रह हैं। सूर्य व शुक्र मूल संज्ञक तथा शेष बुध, गुरु, केतु जीवसंज्ञक ग्रह हैं।

सभी ग्रहों में शनि सबसे वृद्ध है, अतः निसर्ग आयु संग में सबसे अधिक वर्ष देता है। सामान्यतः यह आयुष्यवर्धक ग्रह है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर वर्तमान संस्कृत व्याकारण के नियमों का पालन नहीं दिखता है। अतः रामायणादि की तरह प्राप्त होने वाले अपाणिनीय प्रयोगों को 'आर्ष' समझकर इसकी प्राचीनता का निश्चय हो जाता है।

ग्रहों के उच्चनीच स्थान :–

मेषो वृषो मृगः कन्या कर्को मीनस्तथा तुला।
सूर्यादीनां क्रमादेते कथिता उच्चराशयः।। 49।।
भागादशत्रयोऽष्टाश्व्य स्तिथ्योऽक्षाभमिता नखाः।।
उच्चात् सप्तमभं नीचं तैरेवांशैः प्रकीर्तितम्।। 50।।

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, व तुला ये राशियाँ क्रमशः सूर्य से शनि पर्यन्त उच्च राशियाँ हैं। 10.3.28.15.5.27.20 ये इन राशियों में परमोच्च अंश हैं।

उच्चराशि से सातवीं राशि में उक्त अंशों में ही ग्रहों के परमनीच स्थान होते हैं।

मूलत्रिकोण निर्णय :–

रवेः सिंहे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे गृहम् ।
उच्चमिन्दोर्वृषे त्र्यंशास्त्रिकोणमपरेऽंशकाः ।। 51 ।।
मेषेऽर्कांशास्तु भौमस्य त्रिकोणमपरे स्वभम् ।
उच्चं बुधस्य कन्यायामुक्तं पंचदशांशकाःम् ।। 52 ।।
ततः पंचांशकाः प्रोक्तं त्रिकोणमपरे गृहम् ।
चापे दशांशाः जीवस्य त्रिकोणांशाः परे मताः ।। 53 ।।
तुले शुक्रस्य तिथ्यंशा स्त्रिकोणमपरे गृहम् ।
शनेः कुम्भे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम् ।। 54 ।।

सिंह राशि में $0\text{-}20^0$ अंश तक सूर्य मूलत्रिकोण तथा शेष अंशों में स्वक्षेत्र होता है ।

वृषराशि में चन्द्रमा तीन अंशों तक उच्च तथा आगे शेष अंशों में मूलत्रिकोणी रहता है ।

मंगल का मेषराशि में 12 अंश तक मूल त्रिकोण व तत्पश्चात् स्वक्षेत्र होता है ।

बुध का कन्या राशि में 15^0 अंश तक उच्च, $16^0\text{–}20^0$ तक मूलत्रिकोण एवं $21^0\text{–}30^0$ तक स्वगृह होता है ।

बृहस्पति धनुराशि में 10^0 अंश तक मूलत्रिकोण तत्पश्चात् स्वगृही होता है ।

तुला राशि में शुक्र 15^0 अंशों तक त्रिकोणी तथा तत्पश्चात् स्वक्षेत्री होता है । कुम्भ राशि में शनि 20 अंश तक मूलत्रिकोणी तथा शेष अंशों में स्वगृही होता है ।

ग्रहों की निसर्ग मैत्री :–

रवेः समोज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परे तु सुहृदो भवेयुः ।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेष नभश्चराः स्युः ।। 55 ।।
समौ सितार्की शशिजश्च शत्रुर्मित्राणि शेषाः पृथिवीसुतस्य ।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः परे स्युः शशिनन्दनस्य ।। 56 ।।
गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शनिः समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति ।
शुक्रस्य मित्रे बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजार्यावितरावरी तौ ।। 57 ।।
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि ।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रत्वसमत्वमुक्तम् ।। 58 ।।

ब्रह्माजी ने ग्रहों की परस्पर मैत्री, शत्रुता व समता इसी प्रकार कही है, जैसा कि चक्र में स्पष्ट किया गया है–

ग्रह	मित्र	शत्रु	सम
सूर्य	चन्द्र, मंगल, गुरु	शुक्र,शनि	बुध
चन्द्र	सूर्य, बुध	–	शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि
मंगल	सूर्य, चन्द्र, गुरु	बुध	शुक्र,शनि
बुध	सूर्य,शुक्र	चन्द्र	मंगल, गुरु, शनि
गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध,शुक्र	शनि
शुक्र	बुध, शनि	सूर्य,चन्द्र	मंगल, गुरु
शनि	बुध,शुक्र	सूर्य, चन्द्र, मंगल	गुरु

मूल त्रिकोण राशियों से 2.4.8.12.5.9 तथा उच्च राशीश मित्र होते हैं। शेष ग्रह शत्रु हैं। यदि किसी ग्रह की एक राशि मित्रवर्ग में व दूसरी राशि शत्रु वर्ग में आ जाए तो वह सम कहलाता है। यह सत्याचार्य द्वारा समर्थित मैत्री कही जाती है। इस विषय में विस्तृत विवेचन **'बृहज्जातक प्रणवाख्या'** में देखें।

ग्रहों की तात्कालिक मैत्री :–

दशायबन्धुसहज स्वान्त्यस्थास्ते परस्परम्।
तत्काले सुहृदोऽन्यत्र संस्थिताः रिपवो मताः।। 59।।

ग्रह जिस राशि में स्थित हो; उससे 2.3.4 एवं 10.11.12 भावों में स्थित तत्काल मित्र ग्रह होते हैं। अन्य स्थानों में व ग्रह के साथ स्थित ग्रह तत्काल शत्रु होते हैं। यह तात्कालिक मैत्री होती है।

पंचधा मैत्री :–

तत्काले च निसर्गे च मित्रं स्यादधिमित्रकम्।
मित्रं मित्रसमत्वेतु शत्रुः शत्रुसमत्वके।। 60।।
समो मित्ररिपुत्वे तूभयत्राधिरिपू रिपौ।
एवं विविच्य दैवज्ञो जातकस्य फलं वदेत्।। 61।।

जो ग्रह निसर्ग व तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हो तो 'अतिमित्र' । दोनों प्रकार से शत्रु हो तो 'अतिशत्रु' होता है। यदि एक स्थान पर मित्र व अन्यत्र सम हो तो 'मित्र' तथा एकत्र शत्रु व अन्यत्र सम हो तो 'शत्रु होगा। एकत्र शत्रु व अन्यत्र मित्र हो तो 'सम' होता है। इस प्रकार मित्रामित्र विचार करके दैवज्ञों को फल कहना चाहिए।

ग्रहों का स्थान बल :–

स्वोच्चे शुभं बलं पूर्ण त्रिकोणे पादवर्जितम् ।
स्वर्क्षेऽर्ध मित्रगेहे तु पादमात्रं प्रकीर्तितम् ।। 62 ।।
पादार्ध समभे प्रोक्तं शून्यं नीचास्त शत्रुभे ।
तद्वद् दुष्टफलं ब्रूयाद् व्यत्ययेन विचक्षणः ।। 63 ।।

उच्चस्थ ग्रह शुभ फल 60′ अर्थात् $\frac{1}{1}$, मूलत्रिकोण में चतुर्थांश रहित अर्थात् 45′, स्वक्षेत्र में आधा 30′ कला, मित्रक्षेत्र में चौथाई 15′ कला, समक्षेत्र में $\frac{1}{8}$ अर्थात् 7′.30″ कला तथा शत्रुक्षेत्री या अस्तंगत ग्रह 0 फल देता है। अशुभ फल विपरीत क्रम से समझना चाहिए।

।। स्थान बल चक्र ।।

	उच्च	मू. त्रि.	स्वगृह	मित्र	सम	नीच शत्रु
शुभ फल	60′	45′	30′	15′	7′.30″	0
अशुभ फल	0	7.30′	15′	30′	45′	60′

अप्रकाशक ग्रहों का स्पष्टीकरण :–

चत्वारो राशयो भानौ सत्रिभागास्त्रयोदश ।
युक्त्वा धूमो महादोषः सर्वकर्मविनाशकः ।। 64 ।।
धूमो मण्डलतः शुद्धो व्यतिपातोऽत्र दोषदः ।
सषड्भोऽत्र व्यतीपातो परिवेषस्तु दोषकृत् ।। 65 ।।
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिन्द्रचापस्तुदोषदः ।
दित्र्यंशात्यष्टिभागाढ्यश्चापः केतुः खगोऽशुभः ।। 66 ।।

एकराशियुतः केतुः सूर्यतुल्यः प्रजायते ।

अप्रकाशग्रहाश्चैते पापा दोषप्रदाः स्मृताः ।। 67 ।।

सूर्येन्दुलग्नगेष्वेषु वंशायुर्ज्ञाननाशनम् ।

इति धूमादि दोषाणां स्थितिः पद्मासनोदिता ।। 68 ।।

तात्कालिक स्पष्ट सूर्य में 4.13°.20′ जोड़ने से 'धूम स्पष्ट' होता है । यह महादोष है तथा सब कार्यो को नष्ट करता है ।

धूम स्पष्ट को 12 रशि में से घटाने पर शेष 'व्यतिपात स्पष्ट' होता है । व्यतिपात स्पष्ट में छह राशि जोड़ने से 'परिवेष स्पष्ट' होता है । 12 राशियों में से परिवेष को घटाने पर 'इन्द्र चाप स्पष्ट' होता है । इन्द्रचाप स्पष्ट में 16°.40′ जोडने से 'उपकेतु स्पष्ट' होता है । उपकेतु स्पष्ट में एक राशि जोड़ने से पुनः पूर्ववत् तात्कालिक स्पष्ट सूर्य होता है ।

ये सब अप्रकाशक ग्रह हैं, अर्थात् आकाश में इनका भौतिक पिण्ड नहीं दिखता, लेकिन ये महान् दोष कारक पापिष्ठ उपग्रह होते हैं ।

यदि ये धूमादि ग्रह लग्न, चन्द्र के साथ पड़ें तो वंश, आयु व ज्ञान का नाश करते हैं । यह फल ब्रह्मा जी ने कहा है ।

उदाहरणार्थ सूर्य स्पष्ट 9.11°.15′ + 4.13°.20 = 1.24°.35′ धूम स्पष्ट है ।

12.0.0 – 1.24°.35′ = 10.5°.25′ 'व्यतिपात स्पष्ट' है । व्यतिपात + 6 राशि करने से 4.5°.25′ 'परिवेष स्पष्ट' है । 12.0.0 – 4.5°.25 = 7.24°.35′ 'इन्द्रचाप'हुआ ।

7.24°.35′ + 0.16°.40′ = 8.11°.15′ उपकेतु है । उपकेतु में एक राशि जोड़ने से 9.11°.15′ पुनः स्पष्ट सूर्य हुआ । ये पाँच सूर्य के महादोष कहे जाते हैं ।

गुलिक कालवेला, मृत्यु, यमघण्टादि ज्ञान :–

रविवारादि शन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते ।

दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद् गणयेद् क्रमात् ।। 69 ।।

अष्टमोऽंशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ।

रात्रिमप्यष्टधाकृत्वा वारेशात्पंचमादितः ।। 70 ।।

गणयेदष्टमः खण्डो निरीशः परिकीर्तितः ।

शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो रव्यंशः कालसंज्ञकः ।। 71 ।।

भौमांशो मृत्युरादिष्टो गुर्वशो यमघण्टकः ।

सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ।। 72 ।।

रविवार से शनिवार तक गुलिक खण्ड एवं अन्य **यमघण्टादि का** निरूपण किया जा रहा है। गुलिक साधन के लिए इष्ट दिन का दिनमान समान आठ भागों में विभाजित कर लें। दिन में वार क्रम से इष्ट दिन में जो वार हो वहीं से गणना करने पर क्रमशः सात खण्डों में सातों वारेशों का आधिपत्य आ जाता है। आठवें अंश का कोई स्वामी नहीं होता है। इस प्रकार गणना करने पर दिनमान के जिस अष्टमांश का स्वामी शनि पड़े, वही शनि का अष्टमांश 'गुलिक' कहलाता है।

रात्रि में भी रात्रिमान को 8 से भाग देकर वार क्रम से गणना करें। लेकिन रात्रि के प्रथम अष्टम खण्ड का स्वामी वारेश से पाचवाँ ग्रह होता है, अतः वारेश से पाँचवें ग्रह से शुरू कर क्रमशः सातों वारेशों के खण्ड होंगे। वहाँ भी शनि का अंश गुलिक एवं अष्टम अंश पति रहित होता है।

जिस प्रकार शनि का अष्टमांश गुलिक होता है, उसी तरह सूर्य का अंश 'काल' मंगल का अंश 'मृत्यु', गुरु का अंश 'यमघण्ट' बुध का अंश 'अर्धप्रहर' कहलाता है। ये सब यथा नाम तथा गुण होते हैं, अथवा मनुष्यों के कर्मफल का स्पष्ट संकेत करते हैं।

गुलिक लग्न साधन :–

गुलिकारम्भकाले यत् स्फुटं यज्जन्मकालिकम्।
गुलिकं प्रोच्यते तस्माज्जातकस्य फलं वदेत्।
नामान्तरं तु तस्यैव मान्दिरित्यभिधीयते ।। 73 ।।

पूर्व प्रकार से साधित गुलिकारम्भ काल से सूर्योदायादिष्ट जानकर स्पष्ट लग्न साधन करने पर 'गुलिक लग्न स्पष्ट' हो जाता है। इसी गुलिक का दूसरा नाम 'मान्दि' भी है।

उदाहरणार्थ किसी दिन दिनमान 26.23 घड़ी है। इसे 8 से भाग दिया तो 3.18 अष्टमांश हुआ। उस दिन बुधवार तथा इष्ट घटी 25.18 हैं, 3.18 का एक खण्ड बुध का, 3.18 x 2 = 6.36 तक गुरु खण्ड, 6.36 + 3.18 = 9.54 तक शुक्र खण्ड, 13.12 तक शनि खण्ड गुलिक हुआ। अतः 9.54 इष्ट से 13.12 तक गुलिक काल रहने से 9.54 इष्ट पर उदित लग्न गुलिक लग्न है। अथवा उस दिन सूर्योदय 7.17 IST पर है। अष्टमांश 3.18 घड़ी के घंटा मिनट 1.19 हुए। अतः 7.17 + 1.19 = 8.36 बजे तक बुध खण्ड अर्ध प्रहर, 8.36 + 1.19 = 9.55 बजे तक गुरु खण्ड यमघंटक, तत्पश्चात् 9.55 + 1.19 = 11.14 बजे तक शुक्र का खण्ड तथा 11.14 + 1.19 = 12.33 बजे तक गुलिक है। उस समय मेष लग्न उदित है। अतः गुलिक लग्न मेष हुआ या लग्न में मेष राशि में गुलिक स्थित हुआ।

प्राणपद परिभाषा :–

भांशपादसमैः प्राणैश्चराद्यर्कत्रिकोणभात् ।

उदयादिष्टकालान्तं यद्भं प्राणपदं हि तत् ।। 74 ।।

स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत् ।

चरागद्विभगे भागे भानौ युङ् नवमे सुते ।। 75 ।।

स्फुटं प्राणपदाख्यं तल्लग्नं ज्ञेयं द्विजोत्तम ।

लग्नाद् द्विकोणे तुर्ये च राज्ये प्राणपदं तदा ।। 76 ।।

शुभं जन्म विजानीयात् तथैवैकादशेऽपि च ।

अन्य स्थाने स्थितं चेत् स्यात् तदा जन्माशुभं वदेत् ।। 77 ।।

360 अंशों के चौथाई 90 प्राणों का एक प्राणपद होता है। 'षडभि:प्राणैर्विनाडी स्यात्, इस सिद्धान्तोक्त नियम से 6 प्राण = 1 पल। अतः 90 प्राण = 15 पल का प्राणपद अर्थात् घड़ी की चौथाई के बराबर एक राशि प्राणपद काल होता है। इष्टकालीन प्राणपद राशि जानकर, यदि सूर्य चर राशि में हो तो उसे स्पष्ट सूर्य में ही जोड़ें 1 यदि स्थिर राशि में सूर्य हो तो सूर्य से नवीं राशि में व द्विस्वभाव राशि में सूर्य हो तो सूर्य से पंचम राशि में प्राण राशि जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद लग्न होता है।

अपने इष्टकाल के पल बनाकर, उनमें 15 से भाग देकर जो लब्धि हो वही राशि अंश आदि सूर्य के विचार से सूर्य से 1.9.5 राशि में जोड़ने से भी स्पष्ट प्राणपद होता है।

उदाहरणार्थ किसी दिन 5.10 सायं पर जन्म हुआ तथा उस दिन सूर्योदय 7.17 पर है। $17.10 - 7.17 = 9.53$ घंटे $\times \frac{5}{2} = 24.42$ इष्ट काल हुआ। इसके पल $1482 \div 15 = 98$ राशि तथा 24 अंश या 2.24^0 मिला। सूर्य $9.11^0.15'$ चर राशि में है। अतः $9.11^015' + 2.40^0.0' = 0.5^0.15'$ स्पष्ट प्राणपद हुआ।

प्राणपद साधन की द्वितीय विधि :–

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता ।

दिनकरेणापहृतं शेषं प्राणपदं स्मृतम् ।। 78 ।।

शेषात्पलान्ताद् द्विगुणीविधाय राश्यंशसूर्यर्क्षनियोजिताय ।

तत्रापि तद्राशिचरान् क्रमेण लग्नांश प्राणांश पदैक्यता स्यात् ।। 79 ।।

जन्मेष्ट की घड़ियों को 4 से गुणा करके एकत्र स्थापित कर लें। पलों में 15 का भाग देकर लब्धि को पूर्वत्र जोड़ लें। यह राशि है। **शेष बचे** हुए पलों को 2 से गुणा करने पर अंश होते हैं। इन राश्यंशों **को**

पूर्ववत् सूर्य चर राशि में हो तो सूर्य में, सूर्य स्थिर राशि में हो नवम राशि में तथा द्विस्वभाव राशि में हो तो पंचम राशि में जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद होता है। जन्म लग्न व स्पष्ट प्राणपद के अंशों में समानता रहती है।

इष्ट 24.42 है। 24 घड़ी x 4 = 96 एक स्थान पर रख लिया। 42 ÷ 15 = 2 राशि लब्धि को 96 में जोड़ा तो 98 राशि तथा शेष पल 12 को दुगुना करने से 24 अंश हुए। 98 ÷ 12 = लब्धि 8 शेष 2 राशि 24 अंश को सूर्य में जोड़ने से $0.5^{0}.15'$ स्पष्ट प्राणपद हुआ।

बहुत से संस्करणों में प्राणपद से लग्न की शुद्धि लिखी हुई है। लेकिन प्रस्तुत उदाहरण में इस इष्ट पर दिल्ली में कर्कलग्न के 5 अंश आते हैं। ये अंश प्राणपद के तुल्य नहीं हैं। अंशों में समानता स्थापित करने हेतु इष्ट में शोधन करना चाहिए, यह एक मत है, जिसे हम स्वीकार नहीं करते। हमारी स्पष्ट धारणा है कि प्राणपद द्वारा लग्न शुद्धि करना दूर की कौड़ी है। दूसरी बात यह है कि सभी लग्नों की प्रवृत्ति सूर्योदय व स्पष्ट सूर्य पर आधारित होती है। तब चर, द्विस्वभाव स्थिर राशि में सूर्य रहने से 1.9.5 राशियाँ जोड़कर सूर्य स्पष्ट में जोड़ना क्योंकर युक्त होगा? हमारे विचार से प्राणपद भी एक विशेष लग्न है तथा इसका साधन करने में सर्वत्र सूर्य स्पष्ट में ही मध्यम प्राणांशों को जोड़ना चाहिए। आगे पाराशर में प्राणपद का द्वादश भावों में फल लिखा गया है। अतः प्राणपद से त्रिकोण राशियों 1.5.9 में मनुष्य का जन्मलग्न होता है, ऐसा कहना बिल्कुल असंगत है। प्रस्तुत उदाहरण में ही प्राणपद मिथुन राशि से जन्म लग्न कर्क दूसरा पड़ता है। तब मनुष्य जन्म कैसे सिद्ध होगा। जबकि ये बिल्कुल दो हाथ पैर वाले, पढ़े लिखे साक्षात् व्यक्ति हैं। अतः यह विचार करना हमें बिल्कुल भी युक्त प्रतीत नहीं होता है। अप्रकाशक ग्रहों की तरह कालवेला, अर्धप्रहर, गुलिक, उपकेतु, धूमादि से भी प्राणपद की तरह तब लग्न शुद्धि क्यों न की जाए ? ध्यान रहे, प्राणपद से शुद्ध लग्न मानने पर जन्म लग्न वास्तव में पूर्वीय क्षितिज पर उदीयमान राशि न होकर एक बिल्कुल कल्पित वस्तु हो जाएगा। इष्टशोधन की अन्य अनेक विधियाँ हैं, उनका आश्रय लेना चाहिए।

निषेक लग्न (द्वितीय विधि) :–

यदैतत् जन्म लग्नं वै तन्निषेकस्य चन्द्रमाः।
जन्मचन्द्रस्य राश्यादि तल्लग्नं वै निषेकजम्॥ ॥ 80 ॥
इति सिद्धं विजानीयात् यथा शुभं प्रणोदितम्।
जन्मलग्नस्य घटिकाः भक्ता वसुशतैरिह॥ ॥ 81 ॥

लब्धमाधानगतभं जन्मपूर्वकं मासकम् ।
शिष्टा संख्यातु विप्रेन्द्र ! खरसघ्ना तु भाजिता ।। 82 ।।
खशून्य वसुभिश्चैव ह्याधानसमकालकम् ।

पराशर बोले–

जन्म लग्न व गर्भाधान कालीन चन्द्रमा स्पष्ट प्रायः तुल्य होते हैं। जन्म कालीन चन्द्रमा के राश्यादि आधान लग्न के तुल्य होते हैं, यह निश्चय से जानना चाहिए, ऐसा शिवजी ने कहा है।

जन्म लग्न को कला–विकलात्मक बनाकर, उन्हीं कलाओं को पलादि मानकर 800 से भाग दें। लब्धि गर्भाधान कालीन गत नक्षत्र की संख्या होती है। जन्म से 9 मास पूर्व इस नक्षत्र, चन्द्रमा आदि की संगति देखनी चाहिए। शेष संख्या को 60 से गुणा कर 800 का भाग देने से आधान कालीन नक्षत्र का बीता भाग (भयात) आ जाता है।

यस्मिन् काले भयुक्तं तन्मध्यमेष्टं तदेव हि ।। 83 ।।
तस्मात् प्रसाधयेत् सूर्य भोग्यकालं ततो नयेत् ।।
जन्मचन्द्रस्य भुक्तं वै कालमानीय यत्नतः ।। 84 ।।
जन्मकालीन चन्द्रस्तु गर्भलग्नं विदुर्बुधाः ।

उक्त भयात जिस दिन, जिस समय (जन्म से 9 मास पूर्व) प्राप्त हो, वही मध्यम आधान समय है। इस इष्ट से सूर्य स्पष्ट करके तथा चन्द्रमा के नक्षत्र का भुक्त जानकर, दोनों में समन्वय स्थापित करते हुए, गर्भकालीन लग्न का निर्णय करना चाहिए।

इस विषय को उदाहरण द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं। यह एक वास्तविक उदाहरण है।

जन्म लग्न

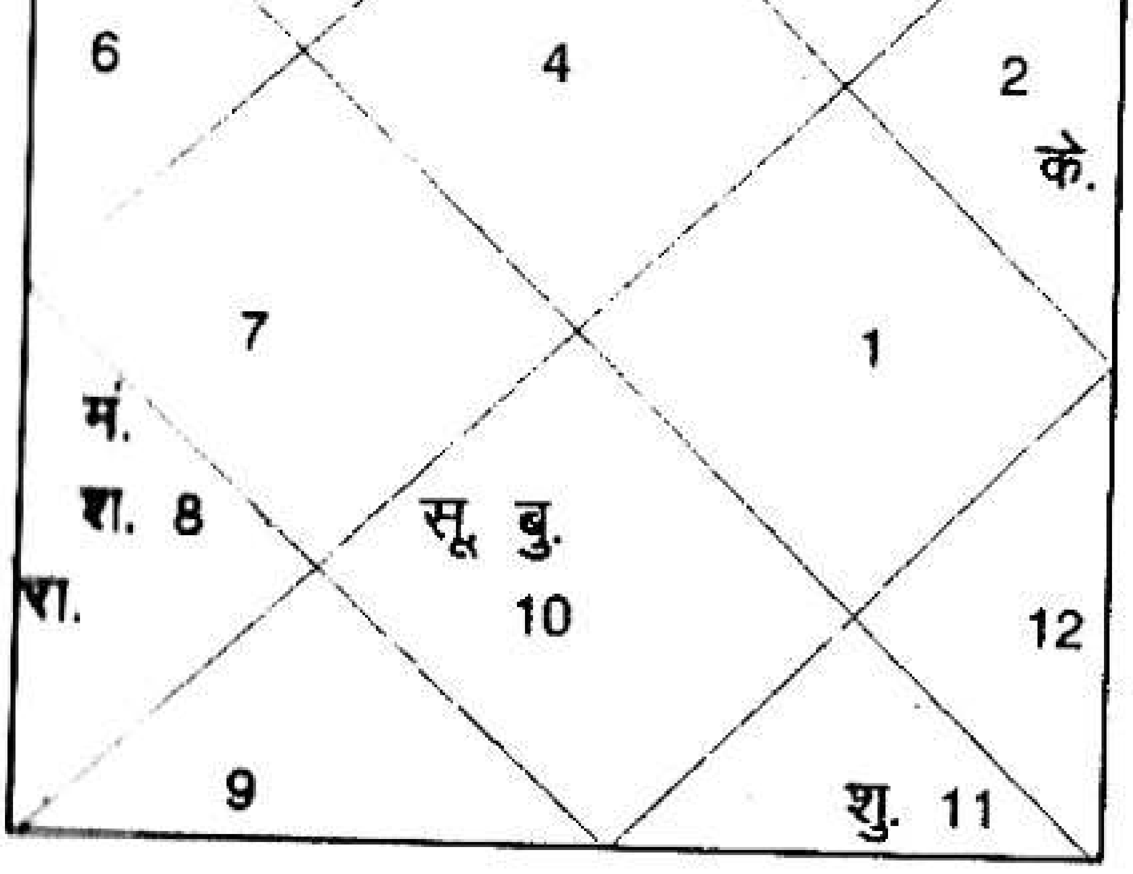

ग्रह स्पष्ट

सूर्य– $9.11^0.15'$	जन्म नक्षत्र आर्द्रा
चन्द्र–$2.11^0.21'$	वार–बुध
मंगल–$7.14^0.12'$	दशमस्पष्ट–11.24^0.
बुध– 9.15.53	पौष शुक्ल
गुरु– 4.6.00	त्रयोदशी सं० 2012
शुक्र–10.16.25	स्थान–दिल्ली
शनि– 7.7.45	जन्म समय
राहु– 7.23.20	5.10 p.m. IST
लग्न– 3.2.48	

(i) जन्म कालीन चन्द्रमा 2.11°.21′ के आसन्न गर्भाधान के समय लग्न होना चाहिए तथा जन्म कालीन लग्न 3.2.48 के आसन्न गर्भाधान के समय चन्द्रमा रहना चाहिए, यह विचारणीय विषय हुआ। जहाँ दोनों तत्त्वों का समन्वय होगा, वही आधान काल है।

(ii) लग्न स्पष्ट 3.2.48 की कलाएँ 5568 ÷ 800 = लब्धि 6, शेष 768 है। अतः अश्विनी आदि क्रम से 6 नक्षत्र आधान के समय गत थे तथा सातवाँ पुनर्वसु नक्षत्र विद्यमान था। शेष 768 x 60 करके पुनः 800 का भाग दिया तो लब्धि 57.30 घड़ी पुनर्वसु का भयात आया। अतः आधान के समय चन्द्रमा पुनर्वसु के प्रथम चरण, कर्क राशि में रहेगा।

(iii) जन्ममास जनवरी से 9 मास पीछे चले तो 28 अप्रैल 1955 को पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्रमा है। उस दिन 3.2°.48′ स्पष्ट चन्द्र के समय या 57.30 पुनर्वसु बीतने पर आधान का समय आता है। उस दिन प्रातः 5.30 बजे चन्द्र स्पष्ट 2.28°.36′ तथा दैनिक गति 13°.47′ है। अतः दोपहर 12.45 पर जन्म लग्न स्पष्ट के आसन्न चन्द्रमा होता है। यह ठीक प्रतीत होता है।

(iv) इस समय में लग्न स्पष्ट 3.24.33 होता है। यह जन्मकालीन चन्द्रमा 2.11°.21′ से 1.13°.12′ आगे है।

लग्नस्पष्टं ततः कुर्यात् सुविचार्य तपोधन !।। 85 ।।

अस्य लग्नस्य राश्यादि जन्मेन्दोश्च तथैव हि।

मैत्रेय ! सुमहाप्राज्ञ ! समासन्नगतं भवेत्।। 86 ।।

उक्त प्रकार से काल साधन करके तदनुसार लग्न स्पष्ट करें। यह लग्न स्पष्ट, जन्मकालीन चन्द्र के प्रायः तुल्य होता है।

आधान चन्द्रस्पष्टं च जन्मलग्न समं भवेत्।

एवं संसाधनीयं च गर्भजन्म भवं फलम्।। 87 ।।

यावत् साम्यं भवेदेतत् तावत्कुर्यादतन्द्रितः।

इष्टशोधनमेतत्तु यथा शम्भुप्रणोदितम्।।

साधारणं सुसम्प्रोक्तं ज्ञेयं विस्तरमन्यतः।। 88 ।।

आधानकालीन चन्द्रमा के समान जन्म लग्न होता है। इस तरह गर्भ व जन्म लग्न का जब तक समन्वय न हो तब तक संशोधन करना चाहिए। यह इष्ट शोधन की विधि शिवजी ने कही है। यहाँ सामान्यतया विषय बताया गया है, विस्तारपूर्वक अन्य ग्रन्थों से समझना चाहिए।

इष्ट शोधन का यह प्रसंग कुछ आधार अवश्य रखता है। लेकिन पहले कहा कि जन्म व आधान के चन्द्रादि आसपास हो सकते हैं, आगे कहा गया है कि जब तक समानता न हो तब तक संशोधन करना चाहिए। यह विरुद्ध है।

पुनरपि पराशर जैसे महर्षि के युग में स्वयं पराशर कहें कि यह हमने संक्षेप में कह दिया है, विस्तार कहीं और से (कहां से ? क्या पराशर से बढ़कर भी उस समय कोई था ?) जान लें। अस्तु, बात में कुछ सार है, चाहे बाद में ही क्यों न जोड़ी गई हो।

हमारे उदाहरण में आधान लग्न व जन्म चन्द्र की तुल्यता लगभग 3 घंटे 20 मिनट पीछे बैठेगी। अस्तु, आसपास हो सकते हैं, यह बात उचित प्रतीत होती है। बिल्कुल अंशादि जब तक समान न हो जाएँ, तब तक घटा बढ़ी करते रहें, यह बात अनुचित है।

उदाहरण से सम्बद्ध गर्भाधान दिवस पर दिल्ली में मिथुन लग्न लगभग 8.30 बजे प्रातः से 11.45 दोपहर तक प्रायः रहता है। इस अवधि में चन्द्रमा भी पुनर्वसु के प्रथम चरण में ही सिद्ध होता है। अतः गर्भ कुण्डली इस प्रकार रहेगी। मिथुन में छठा या अन्तिम नवांश मानने से सारी बातें यथावत् प्रायः मिल जाती हैं।

।। गर्भाधान कुण्डली ।।

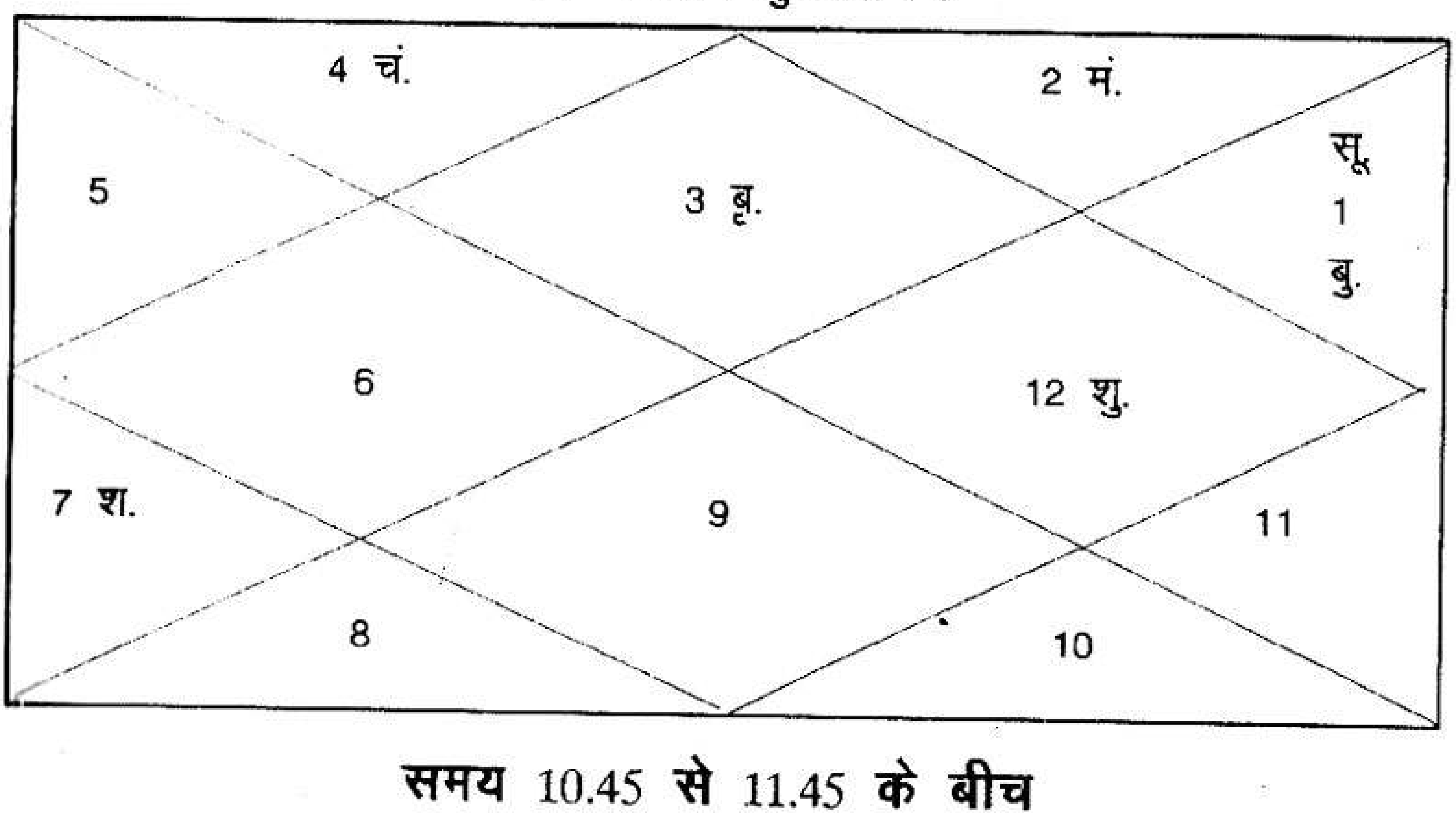

समय 10.45 **से** 11.45 **के बीच**

आइए, इससे फल विचार करते हैं। लग्न में द्विस्वभाव राशि व नवांश है। चन्द्र व शुक्र दोनों ही सम राशि में हैं। बुध, गुरु, लग्न विषम राशियों में हैं। मंगल मिथुन नवांश में स्थित हैं। ये सारी बातें जुड़वाँ गर्भाधान को द्योतित करती हैं (देखें बृहज्जातक, निषेक)। यही वास्तविकता भी है।

लग्न का अन्तिम नवांश होने से तथा लग्न में दिनबली राशि व नवांश रहने से सायं सन्ध्या समय से थोड़ा पहले जन्म सम्भव होगा। यही वास्तविकता भी है।

हमारे विचार से लगभग आसपास राश्यादि रहना ही युक्तिसंगत है। बिल्कुल राश्यादि समान करने के फेर में असकृत् क्रिया (बार–बार–घटा बढ़ी) नहीं करनी चाहिए।

यह आधान शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त है, यह बात चिन्तनीय है। संस्कृत में इस सम्बन्ध में निषेक व आधान ये दो शब्द प्रचलित हैं। इन दोनों को समानार्थक मान लेने की प्रथा है। लेकिन वास्तव में निषेक अर्थात् निषेचन, निक्षेप, रखना, फेंकना, छिड़कना आदि अर्थ को द्योतित करता है। यह स्त्री पुरुष के समागम काल को द्योतित करता है। कुलूकभट्ट ने निषेककाल 'वीर्यपात काल' कहा है । 'निषिच्यत इति निषेकं रेतश्चोत्सृजेत्'। इसके अलावा आधान शब्द का अर्थ है स्थापित करना, धारण करना, अधिगम इत्यादि। इससे वास्तविक गर्भाधान अर्थात् शुक्ररजः संयोग, डिम्बशुक्राणु मिलन अर्थात् वास्तविक सफल गर्भाधान संकेतित है। निषेक का प्रयोजन जब गर्भाधान हो तब उस स्त्रीसंग का नाम गर्भाधान संस्कार कहा है, अन्यथा सामान्य निषेक तो प्रत्येक मिलन में होता ही है। मनु ने इन्हें दो अलग वस्तु माना है। दार क्रिया (COHABITATION) तथा आधान (CONCE-PTION)।

पुनर्दारक्रियां कुर्यात् पुनराधानमेव च । (मनुः)

अतः आधान का समय 24 घंटों में कभी भी हो सकता है। सम्भोग के बाद कभी कभी 5-6 घंटों बाद तक भी गर्भाधान हो सकता है। महर्षि ने आगे निषेक लग्न की विधि अलग बताई है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
ग्रहगुणस्वरूपाध्यायस्तृतीयः ।।3।।

4

।।अथ राशिस्वरूपाध्यायः।।

पराशर उवाच–

यदव्यक्तात्मको विष्णुः कालरूपोजनार्दनः ।
तस्याङ्गानि निबोध त्वं क्रमान्मेषादिराशयः ।।1।।

विराट रूप भगवान् विष्णु जो स्वयं काल रूप या काल पुरुष हैं, उसी के विविध अंगों के रूप में मेषादि बारह राशियों को समझना चाहिए।

अहोरात्रस्य पूर्वान्त्यलोपाद् होरेति प्रोच्यते ।

तस्य विज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत् ।। 2 ।।

अहोरात्र शब्द के प्रथम व अन्तिम अक्षर को छोड़ देने से शेष 'होरा शब्द निष्पन्न होता है । इसी होरा के विशेष ज्ञान से जातक शास्त्र में समस्त फल कहना चाहिए ।

इस विषय में सभी एक मत हैं । अहोरात्र कालवाधक होने से काल या समय की ईकाई भूत 'होरा' या लग्न पर आधारित होने से होराशास्त्र नाम पड़ा है । इससे यह बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है कि दिन–रात के परिवर्तन या सूर्योदयादि से साधित उदित राशि खण्ड ही लग्न या होरा है, तथा उसी से फलविचार करना चाहिए । शंकुच्छाया या पलभा या इष्टकालादि साधित लग्न उदय लग्न (RISING SIGN) ही होता है ।

मेषो वृषश्च मिथुनः कर्कसिंह कुमारिकाः ।

तुलाली च धनुर्नक्रे कुम्भो मीनस्ततः परम् ।। 3 ।।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन, ये राशियाँ क्रमशः उदय क्षितिज पर बारी–बारी से उदित होती रहती हैं । बारहों राशियों का कुल उदय एक अरोहात्र 60 घड़ी या 24 घंटे में पूर्ण होने से अरोहात्र शब्द का अवयवभूत लग्न (होरा) सर्वथा उदय लग्न ही है । जो कि इष्ट काल व स्पष्ट सूर्य द्वारा साधित प्रसिद्ध लग्न ही है, न कि प्राणपदादि द्वारा शुद्ध कल्पित लग्न । विशेष विवेचन के लिए बृहज्जातक की हमारी अभिनव टीका भी देखें ।

राशियों का अंगविभाग :–

शीर्षाननौ तथा बाहू हृत्क्रोडकटिबस्तयः ।

गुह्योरुजानुयुग्मे वै युगले जंघके तथा ।। 4 ।।

चरणौ द्वौ तथा लग्नाज्ज्ञेया शीर्षादयः क्रमात् ।।

मेषादि बारह राशियाँ कालपुरुष अव्यक्त विष्णु के क्रमशः सिर, मुख, भुजा, हृदय, पेट, कटि, बस्ति, गुप्तांग, जाँघें, घुटने, पिण्डलियाँ व पैर हैं ।

जन्म लग्न से भी इसी प्रकार सिर आदि अंग विभाग जानना चाहिए । अर्थात् सिर लग्न, द्वितीय भाव मुख, तृतीय भाव भुजा, चतुर्थ भाव हृदय, पंचम भाव पेट, षष्ठ भाव कटि, सप्तम भाव बस्ति, अष्टम भाव गुप्तांग, नवम भाव जाँघें, दशम भाव घुटने, एकादश भाव पिण्डलियाँ व द्वादश भाव पैर हैं ।

चरस्थिरद्विस्वभावाःक्रूराक्रूरौनरस्त्रियौ ।।5।।

ये राशियाँ क्रमशः चर, स्थिर, द्विस्वभाव संज्ञक होती हैं । अर्थात् **मेष** कर्क, तुला, मकर चर, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ स्थिर व मिथुन, कन्या धनु मीन द्विस्वभाव हैं ।

इनमें क्रमशः क्रूरसौम्य संज्ञक व पुरुष स्त्री संज्ञा भी समझनी चाहिए । अर्थात् मेष राशि क्रूर व पुरुष तथा वृष राशि सौम्य व स्त्री है । इसी तरह सभी विषम राशियाँ क्रूर व पुरुष संज्ञक तथा सम राशियाँ स्त्री व सौम्य संज्ञक होती हैं ।.

पित्तानिलत्रिधा त्वैक्यं श्लेष्मिकाश्च क्रियादयः ।। $5\frac{1}{2}$ **।।**

मेष पित्तात्मक, वृष वातात्मक, मिथुन त्रिधात्मक अर्थात् वात–पित्त–कफ मिश्रित तथा कर्क कफात्मक है । इसी, तरह 1.5.9 राशियाँ पित्तात्मक, 2.6.10 वातात्मक, 3.7.11 त्रिदोषात्मक तथा 4.8.12 कफात्मक होती हैं ।

राशियों का विस्तृत स्वरूप :–

रक्तवर्णो बृहद्गात्रश्चतुष्पाद् रात्रि विक्रमी ।।6।।
पूर्ववासी नृपज्ञातिः शैलचारी रजोगुणी ।
पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः ।।7।।

मेषराशि का लाल रंग, बड़ा शरीर, चतुष्पद स्वरूप (चौपाया), रात्रि बली पूर्व दिशा में निवास, राजा जाति अर्थात् क्षत्रिय वर्ण, पर्वत पर वास, रजोगुण की प्रधानता, पृष्ठोदय, अग्नि तत्त्व व मंगल स्वामी है ।

राशियों की उक्त संज्ञाएँ व विस्तृत स्वरूप वराहमिहिर, सत्याचार्य, यवनाचार्यो द्वारा समर्थित है । सन्दर्भ स्पष्टीकरणार्थ वृहद्यवनजातक व वृहज्जातक का राशि स्वरुप प्रकरण भी देखना चाहिए ।

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घः चतुष्पाच्छर्वरी बली ।
याम्येट् ग्राम्यो वणिग्भूमिः रजी पृष्ठोदयी वृषः ।।8।।

वृष राशि का श्वेत वर्ण, स्वामी शुक्र, लम्बा शरीर, चौपाया रूप, रात्रिबली, दक्षिण दिशा का स्वामी, ग्रामवासी, वैश्य वर्ण, रजोगुण व पृष्ठोदयी स्वरूपहै ।

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम् ।
प्रत्यक्स्वामिद्विपादरात्रिबलीग्रामव्रजोऽनिली ।।9।।
समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः ।

मिथुन राशि, शीर्षोदय, स्त्री पुरुष का जोड़ा, पुरुष के हाथ में गदा, स्त्री के हाथ में वीणा, पश्चिम दिशा का स्वामी, द्विपद (मनुष्य) राशि, रात्रि बली, गाँव में रहने वाली, वायु प्रकृति, चौरस वर्गाकार सा शरीर, हरा रंग, बुध स्वामी यह स्वरूप है ।

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशिवीर्यवान् ।। 10 ।।

बहुपदुतरः स्थौल्यतनुः सत्त्वगुणी जली ।

पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगांकाधिपतिः स्मृतः ।। 11 ।।

कर्क राशि का स्वरूप इस प्रकार है–पाटल (हल्का लाल गुलाबी) रंग, वन में निवास, ब्राह्मण वर्ण, रात्रिबली, अति चतुर स्वभाव, शरीर में स्थूलता की प्रवृत्ति, सत्त्वगुण, जलतत्त्व, पृष्ठोदयी, उत्तर दिशा, चन्द्रमा स्वामी है ।

सिंहः सूर्याधिपः सत्त्वी चतुष्पात्क्षत्रियो बली ।

शीर्षोदयी बृहद्गात्रः पाण्डु पूर्वेड् द्युवीर्यवान् ।। 12 ।।

सिंह राशि का स्वामी सूर्य, सत्त्वगुण, चतुष्पद रूप, क्षत्रिय वर्ण, वनचारी ताकतवर शरीर, शीर्षोदयी रूप, बड़ा शरीर, पाण्डु (हल्का पीला) रंग, पूर्व दिशा, दिन बली, यह स्वरूप है ।

पार्वतीयोथकन्याख्यो राशिर्दिनबलान्वितः ।

शीर्षोदयश्च मध्यमांगो द्विपाद्याम्य चरः स्मृतः ।। 13 ।।

ससस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभंजिनी ।

कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपः ।। 14 ।।

कन्या राशि का स्वरूप ऐसा है– एक कन्या, अनेक रंगों वाली, वायु प्रकृति, तमोगुणी, आग व अन्न पास में रखे हुए हैं । कन्या राशि पर्वतवासी, दिन बली, शीर्षोदयी, मध्यम शरीर, द्विपद स्वरूप, दक्षिण दिशा व बुध स्वामी है ।

शीर्षोदयी द्युवीर्याढ्यस्तुलः शूद्रो रजोगुणी ।

पश्चिमेट् भूचरः शुक्राधिपो मध्यतनुर्द्विपात् ।। 15 ।।

तुला राशि शीर्षोदयी, दिन बली, शूद्र (काला) वर्ण, रजोगुणी, पश्चिम दिशा की अधीश, भूमिचारी, मँझला शरीर, द्विपद स्वरूप, शुक्र स्वामी, ऐसा स्वरूप है ।

शीर्षोदयोऽथ स्वल्पांगो बहुपाद ब्राह्मणो बिली ।

सौम्यस्थो दिनवीर्याढ्यः पिशंगो जलभूचरः ।। 16 ।।

रोमस्वाढ्योऽतितीक्ष्णांगो वृश्चिकश्च कुजाधिपः ।

वृश्चिक राशि शीर्षोदयी, छोटा शरीर, अनेक पैरों वाला स्वरूप, ब्राह्मण वर्ण, बिल, गुप्त प्रदेशों में रहने वाली, उत्तर दिशा की अधीश, दिन बली, पिशंग अर्थात् भूरा रंग, जलचर व थलचर, रोमयुक्त शरीर वाली, तीखे अंग (डंक) वाली, मंगल स्वामी है ।

पृष्ठोदयोऽथजङ्घोऽथ गुर्वीशः सात्त्विको धनुः ।।17 ।।

पिंगलो निशीवीर्याढ्यः पावकः क्षत्रियो द्विपात् ।
आदावन्ते चतुष्पादः समगात्रो धनुर्धरः ।। 18 ।।
पूर्वस्थो वसुधाचारी तेजस्वी ब्रह्मणा कृतः ।

धनु राशि पृष्ठोदयी, घोड़े के समान पिण्डलियों वाला, गुरु का आधिपत्य, सात्विक, पिंगल (थोड़ा पीला) रात्रि बली, अग्नि तत्त्व, क्षत्रिय वर्ण, द्विपदरूप अर्थात् मनुष्य यह पूर्वार्ध का रूप है ।

उत्तरार्ध में चतुष्पाद अर्थात् चौपाया रूप, समान लम्बाई चौड़ाई वाला शरीर, धनुर्धारी रूप यह उत्तरार्ध का स्वरूप है ।

यह पूर्व दिशा का वासी, पृथ्वीचारी, तेजस्वी रुप वाला है, ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है ।

मन्दाधिपस्तमी भौमी याम्येट् च निशि वीर्यवान् ।। 19 ।।
पृष्ठोदयी वृहदगात्रः मकरो जलेभूचरः ।
आदौ चतुष्पदोऽन्ते तू विपदो जलगो मतः ।। 20 ।।

मकर राशि का स्वामी शनि, तमोगुणी स्वभाव, दक्षिण दिशा की अधिपति, रात्रि में बलवान, पृष्ठोदयी, बड़े शरीर वाली, मगरमच्छ की आकृति वाली, जल व थलचारी, अग्रभाग में चौपाया रूप (हिरणवत्) पृष्ट में पैर रहित, जलचारी मकर स्वरूप वाली है ।

कुम्भः कुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनु द्विपात् ।
द्युवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः ।। 21 ।।
शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः ।

हाथ में घड़ा लिए पुरुष, नेवले या ऊँट जैसा भूरा रंग, मध्यम शरीर, द्विपद मनुष्य रूप, दिनबली, जल मध्य (जल प्रदेश) में स्थित, वायु प्रकृति, शीर्षोदयी, तमोगुणी, शूद्र वर्ण, पश्चिम दिशेश, शनि की राशि, ऐसा कुम्भ राशि का स्वरूप है ।

मीनौ पुच्छास्य संलग्नौ मीनराशिर्दिवाबली ।। 22 ।।
जली सत्त्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः ।
अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो ह्युभयोदयी ।। 23 ।।
सुराचार्याधिपश्चास्य राशीनां गदिता गुणाः ।
त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च ।। 24 ।।

दो मछलियाँ एक दूसरे से मुंह व पूँछ मिलाए हुए, दिनबली, जलचारी, सतोगुणी, स्वस्थ, द्विज अर्थात् ब्राह्मणवर्ण, पैर रहित, मध्यम शरीर वाली, उत्तर दिशा. में निवास करने वाली, उभयोदयी, बृहस्पति स्वामी, यह मीन राशि का स्वरूप है ।

इस प्रकार मैंने (पराशर ने) राशियों के गुण धर्म स्वरूप बताए हैं, इनके आधार पर जातक में स्थूल व सूक्ष्म फलादेश करना चाहिए ।

दिवा शीर्षोदयश्चैव सन्ध्यायामुभयोदयाः ।
नक्तं पृष्ठोदयाश्चैव बलाधिक्या उदीरिताः ।। 25 ।।

शीर्षोदय राशियाँ दिन में, उभयोदय राशियाँ सन्ध्या में एवं पृष्ठोदयी राशियां रात्रि में बलवान् होती हैं।

गर्भाधान (निषेक) लग्न ज्ञान :–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणुष्व मुनिपुंगव ।

जन्मलग्नं च संशोध्य निषेकं परिशोधयेत् ।। 26 ।।

तदहं संप्रवक्ष्यामि मैत्रेय त्वं विधारय ।

जन्म लग्नत् परिज्ञानं निषेकं सर्व जन्तुषु ।। 27 ।।

पराशर बोले–हे मुनिश्रेष्ठ मैत्रेय ! अब जन्म लग्न शोधन (Rectification) करने के बाद निषेक या गर्भाधान लग्न का संशोधन करना चाहिए। उसी को यहाँ कह रहा हूँ। तुम ध्यान से सुनो। जन्म लग्न से ही निषेक लग्न का ज्ञान सभी प्राणियों के प्रसंग में सम्भव है।

यस्मिन्भावे स्थितो मन्दस्तस्य मान्देर्यदन्तरम् ।

लग्नभाग्यान्तरं योज्यं यच्च राश्यादि जायते ।। 28 ।।

मासादि स्तन्मितं ज्ञेयं जन्मतः प्राक् निषेकजम् ।

यध्यदृश्यदलेऽगेशस्तदेन्दोर्भुक्तभागयुक् ।। 29 ।।

तत्काले साधयेल्लग्नं शोधयेत्पूर्ववत् तनुम् ।

शनि जिस भाव में हो तथा मान्दि (गुलिक) के अधिष्ठित भाव (गुलिक लग्न) का अन्तर करें। अब लग्न व भाग्य (नवम) भावों का परस्पर अन्तर करके पूर्वप्राप्त में जोड़ दें। इस प्रकार प्राप्त फल राश्यादि होगा। अर्थात् यह सूत्र काम में लें।

(मान्दि लग्न – शनि स्थित भाव) + (नवम स्पष्ट – लग्न स्पष्ट) = राश्यादि फल।

पूर्व प्रकार से प्राप्त राश्यादि लब्धि को मास, दिन, घटी, पल मान लें। जन्म समय से पूर्व उतने ही समय में निषेक हुआ था।

यदि जन्म लग्नेश अदृश्य चक्रार्ध (लग्न से सप्तम के मध्य) में हो तो पूर्वप्राप्त मासादि में चन्द्रमा स्पष्ट को जोड़कर तब मासादि काल जानना चाहिए। इस समय पर उदित लग्न निषेक लग्न होता है।

तस्मात्लग्नात्फलं वाच्यं गर्भस्थस्य विशेषतः ।। 30 ।।

शुभाशुभं वदेत् पित्रोर्जीवनं मरणं तथा ।

एवं निषेकलग्नेन सम्यक् ज्ञेयं स्वकल्पनात् ।। 31 ।।

इस निषेक लग्न से गर्भस्थ शिशु का तथा माता–पिता का शुभाशुभ स्वविवेक से बताना चाहिए।

पूर्वोक्त क्रमिक उदाहरण में इस बात का विचार करते हैं।

उपग्रह स्पष्ट (क्रमिक उदाहरण)

			इष्टकाल	स्पष्ट
धूम–	1.24°.35′	अर्धप्रहर	7.17. IST	9.12°.7′
व्यतिपात–	10.5°.25′	यमघंटक	8.36 बजे	10.5°.47′
परिवेष–	4.5°.25′	गुलिक	11.14 बजे	0.0°.37′
इन्द्रचाप–	7.24°.35′	काल	12.33 बजे	0.25°.19′
उपकेतु–	8.11°.15′	मृत्यु	15.11 बजे	2.6°.33′
प्राणपद–	0.5°.15′			

।। द्वादश भाव स्पष्ट ।।

	भाव	सन्धि		भाव	सन्धि
I	3.2.48.00	3.16.20.50	VII	9.2.48.00	9.16.20.50
II	3.29.53.40	4.13.26.30	VIII	9.29.53.40	10.13.26.30
III	4.26.59.20	5.10.32.10	IX	10.26.59.20	11.10.32.10
IV	6.24.5.0	6.10.32.10	X	11.24.5.00	0.10.32.10
V	6.26.59.20	7.13.26.30	XI	0.26.59.20	1.13.26.30
VI	7.29.53.40	8.16.20.30	XII	1.29.53.40	2.16.20.30

गुलिक स्पष्ट 0.0.37.00 – शनि स्थित भाव 6.26.59.20 = 5.3°.38′.40″ है। नवम स्पष्ट 10.26°.59′.20″ – 3.2°.48′.0″ लग्न = 7.24°.8′.20″ है। लग्नेश अदृश्यार्ध में नहीं है, अतः इन दोनों का योग किया तो 12.27.47.00 यह संख्या मिली। इसका आशय हुआ कि जन्म से 12 मास 27 दिन 47 घड़ी पूर्व निषेक हुआ था। यह पूर्वोक्त विधि से विरुद्ध है। वहाँ निश्चय से 9 मास पूर्व आधानादि कहा था। अतः 'मासादि तन्मित ज्ञेयं' से प्राप्त समय विचार्य हो सकता है।

हमारे विचार से गुलिक, भाव स्पष्ट व शनि आदि की राशि को छोड़कर शेष अंशादि यथावत् लेने चाहिए, उसके ऊपर 8 संख्या रखकर जन्म तिथि में से घटा दें। प्राप्त संख्या निषेक से लेकर गर्भवास काल की द्योतक होगी। अथवा 9 मास से अधिक समय आने पर निश्चित 9 मास तथा कम आने पर यथावत् ग्रहण कर सकते हैं।

पूर्वोक्त उदाहरण में पहले आधान काल 28 अप्रैल 1955 प्रातः 11 बजे के लगभग आया था।

यहाँ 12 संख्या (राशि) रहित 27.47.00 के पहले 8 रखा तो 8.27.47 मासादि कुल गर्भकाल हुआ। जन्मतिथि 25.1.1956 में से 8.27.47 या 8.28.00 मासादि घटाया।

	वर्ष	मास	दिन
जन्म तिथि	1956	1	25
–गर्भकाल	0	8	28
	1955	4	27

इस प्रकार निषेक काल 27 अप्रैल 1955 को 47 घड़ी इष्ट पर कभी निषेक हुआ था। यह तिथि पीछे प्राप्त आधान दिन से पिछली रात ही है। अर्थात् सूर्योदय 7.17 पर होने से सूर्योदय से 5 घंटे 12 मिनट पूर्व निषेक हुआ था। यह समय 27 अप्रैल की रात्रि 02.5 A.M. अर्थात् कैलेंडर तिथि 28 अप्रैल 2.5 A.M. पर निषेक व 28 अप्रैल को ही 11.00 A.M. के आसन्न गर्भाधान या भ्रूणस्थापन हुआ था। इस प्रकार नियम प्रामाणिक प्रतीत होता है। बहुत से उदाहरणों पर घटित करके परीक्षा करनी चाहिए।

निषेक कुण्डली (उदाहरण) चन्द्र स्पष्ट 2.26°.52′

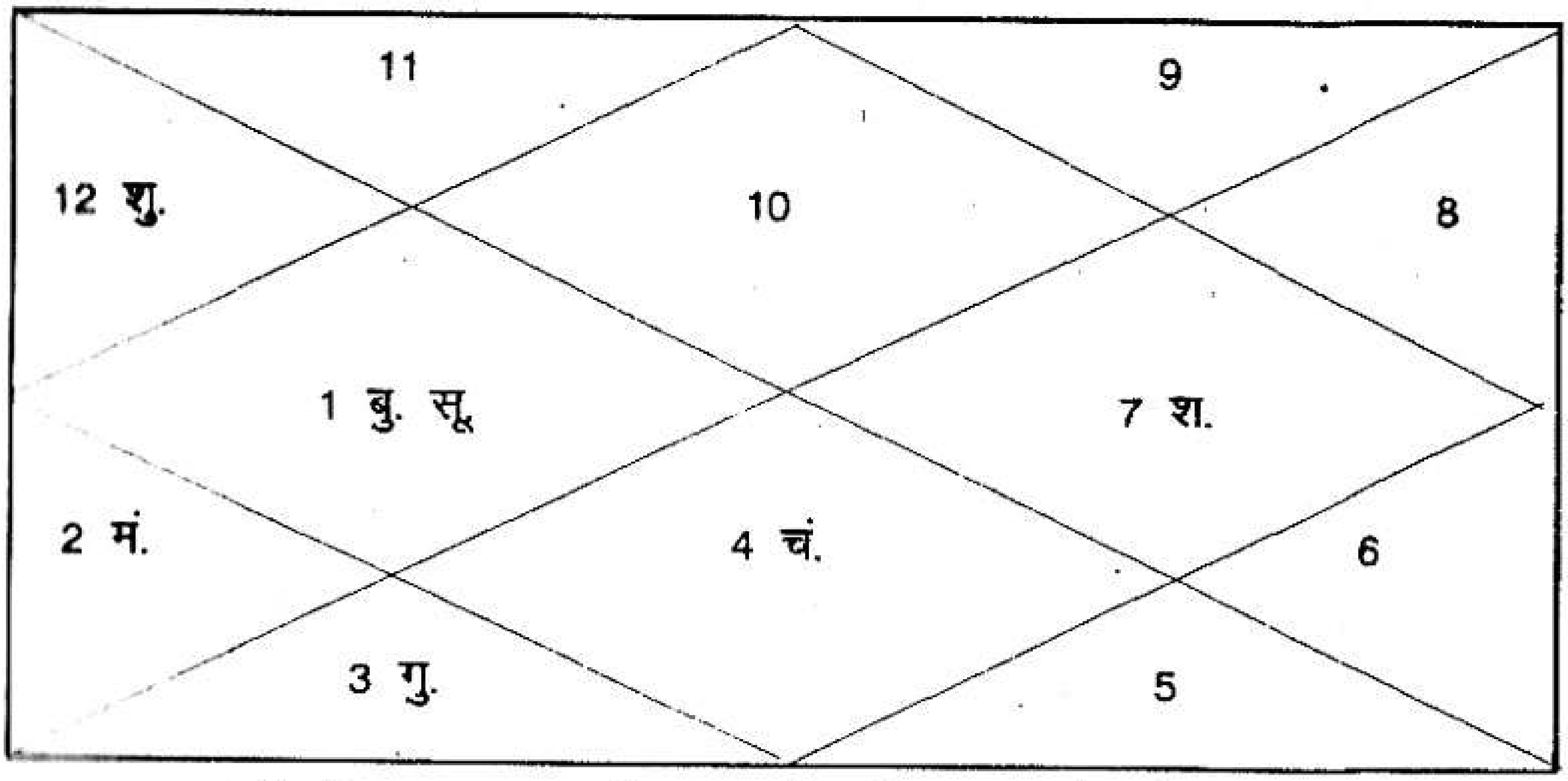

यहाँ भी मकर का अन्तिम नवांश द्विस्वभाव है, शेष पूर्ववत् ग्रहस्थिति है ही। अतः युगल जन्म प्रमाणित होता है।

गर्भ का क्रमिक विकास :–

द्रवत्वं प्रथमे मासि कललाख्यं प्रजायते।
द्वितीये तु घनः पिण्डः पेशीप्रच्छन्नबुद्बुदः।। 32।।
पुंस्त्री नपुंसकानां हि प्रागवस्थाः क्रमादिमाः।
तृतीये त्वङ् कुराद्यंगकरांघ्रि शिरसो मतम्।। 33।।
अंग प्रत्यंगभागाश्च सूक्ष्मा स्युर्युगपत्तथा।
चतुर्थे व्यक्तता तेषां भागानामपि जायते।। 34।।
पुंसो शौर्यादयो भावा भीरुत्वाद्यास्तु योषिताम्।
नपुंसकाना संकीर्णा भवन्तीति प्रचक्षते।। 35।।

मातृजान् चास्य हृदयं विषयानतिकांक्षति ।
अतोमातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद् गर्भसमृद्धये ।। 36 ।।
मातुश्चेद् विषयालाभस्तदार्तो जायते सुतः ।
प्रबुद्धं पंचमे चित्तं मासि शोणितं पुष्टता ।। 37 ।।
षष्ठेऽस्थिस्नायुन्रखरकेशो रोमविविक्तता ।
बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वंगपूर्णता ।। 38 ।।
आद्यो मुख स्वहस्ताभ्यां श्रोतृरन्ध्रे पिधाय स्वः ।
उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते गर्भालयान्वितः ।। 39 ।।
स्मरन्पूर्वानुभूतान्स नानायातानुयातनात् ।
मोक्षोपायमपि ध्यायन्वर्ततेऽभ्यासतत्परः ।। 40 ।।
अष्टमे त्वक् श्रुती स्यातामोजश्चैतन्य हृद्भवम् ।
शुद्धमेतच्च रक्तं च निमित्तं जीवितं मतम् ।। 41 ।।
अष्टमेन पुनर्गर्भ चंचलं तत्प्रधावति ।
अतो जातोऽष्टमे मासि न जीवेद्योऽथशोभनः ।।
समयः प्रसवश्चास्य मासेषु नवमादिषु ।। 42 ।।

निषेक या गर्भाधान के बाद गर्भ का क्रमिक विकास बताया जा रहा है। इसी के आधार पर बाद के आचार्यो ने आधानाध्याय लिखे हैं।

पहले मास में द्रव (रजोवीर्य मिश्रण) कलल अर्थात् बुलबुले के समान रूप। दूसरे मास में घनता लिए हुए पिण्ड अर्थात् कुछ ठोसपन प्राप्त करता हुआ आकार होता है। इसी द्वितीय मास में पुरुष, स्त्री या नपुंसक का निर्णय प्रतीत होने लगता है।

तृतीय मास में अंकुर रूप में शरीर के प्रत्यंग निकलने लगते हैं। हाथ पैर व सिर का विभाग प्रकट होने लगता है।

चौथे मास में अंगों की स्पष्टता हो जाती है। इसी मास में पुरुष भ्रूण में शूरतादि पुरुषोचित गुण व स्त्री भ्रूण में भीरुतादि स्त्रियोचित गुण तथा नपुंसक भ्रूण में दोनों गुणों का मिश्रण पूर्वावस्था में संक्रमित हो जाता है। इसी मास में माता के हृदय में पैदा होने वाली इच्छाओं (दोहद) का अनुभव भ्रूण भी करता है। अतः माता की जो जो इच्छाएँ हों, उन्हें प्रयत्न पूर्वक पूरी करनी चाहिएं। यदि गर्भेच्छा पूरी न हो तो बालक पर मानसिक कुप्रभाव पड़ता है।

पाँचवें मास में भ्रूण का चित्त प्रबुद्ध होता है, तथा रक्त पुष्ट होने लगता है। छठे मास में हड्डी, स्नायु, नख व बाल, रोम आदि प्रकट होने

लगते हैं। सातवें मास में बल, रंगत बढ़ती है तथा सारे अंग पूर्ण बन जाते हैं। इसी मास में अपने हाथों से कान व मुख को दबाकर बच्चा गर्भाशय में निवास से उद्विग्न होकर विविध यातनाओं को याद करता हुआ, लगातार बाहर निकलने के लिए उपाय खोजता है।

आठवें मास में त्वचा, कान, शरीर का ओज, हृदय की समुचित मात्रा में चेतनता, शुद्ध रक्त आदि सम्पूर्ण होकर पूरा शिशु हो जाता है। इस महीने में बच्चा बहुत चंचलता दिखाता है। यदि आठवें मास में प्रसव हो जाए तो यह शुभ नहीं है। तब बालक के जीवन की सम्भावनाएँ क्षीण होती हैं।

अतः समुचित प्रसव समय 9-10 मास में अर्थात् नवें मास से आगे होना ही है।

विशेष व्युत्पत्ति के लिए हमारा वृहज्जातक अभिनव भाष्य का आधानाध्याय व वृद्ध यवन जातक का सम्बद्ध भाग देखें। इन्हीं मूल श्लोकों को आचार्यो ने अपनी मेघा व अनुभव के द्वारा वैज्ञानिक विवेचन का आधार बनाया है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
राशिस्वरूपाध्यायश्चतुर्थः ।।4।।

5

।। अथ विशेषलग्नाध्यायः ।।

अथ वक्ष्याम्यहं विप्र ! कल्पनात्मकलग्नकान् ।
भावहोराघटीसंज्ञः प्रभृतीति यथाक्रम् ।।1।।

हे विप्र मैत्रेय ! अब मैं भाव, होरा, घटी प्रभृति विशिष्ट लग्नों को क्रमशः बता रहा हूँ। ये कल्पित लग्न हैं। इनका समन्वय उदित लग्न से सर्वत्र नहीं होता। अतः कल्पित लग्न कहा है।

भाव लग्न ज्ञान :–

सूर्योदयात्समारभ्य घटीपंच प्रमाणतः ।
जन्मेष्टकालपर्यन्तं गणनीयं प्रयत्नतः ।।2।।
इष्टं घट्यादिकं यत्तु पंचभिर्भादिकं फलम् ।
योज्यमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं तदा ।।3।।

सूर्योदय से प्रारम्भ करके 5-5 घड़ी अर्थात् 2 घंटे का एक-एक लग्न 24 घंटों में व्यतीत होकर सम्पूर्ण राशि चक्र समाप्त हो जाता है। अतः सूर्योदय से प्रारम्भ करके इष्ट समय तक दो-दो घंटों के जितने खण्ड बीत गए हों, उन्हें सावधानी से सूक्ष्मता पूर्वक जान लिया जाए।

एतदर्थ अपनी इष्टघट्यादि को 5 से भाग देकर (अथवा इष्ट घंटों को 2 से भाग देकर) जो फल मिले वह राश्यादि होता है। इसमें औदयिक अर्थात् उस दिन का प्रातःकालीन स्पष्ट सूर्य जोड़ देने से भाव लग्न स्पष्ट आ जाता है।

सभी लग्नों की प्रवृत्ति सूर्योदय व सूर्य की राशि से होती है। अतः औदयिक सूर्य से जोड़ना बिल्कुल सही है। कई प्रतियों में कहा है कि विषम राशि लग्न हो तो सूर्य में व समराशि लग्न हो तो जन्म लग्न में जोड़ना चाहिए, यह त्रुटिपूर्ण है। इस विषय में अपने 'उलझे प्रश्न सुलझे उत्तर' पुस्तक में तथा 'ज्योतिष सर्वस्व' में स्पष्टतया लिख चुके हैं।

हमारे पूर्वोक्त उदाहरणों में जन्म समय सायं 5.10 बजे तथा सूर्योदय 7.17 बजे हैं। अतः $17.10 - 7.17 = 9.53$ घंटात्मक इष्ट काल हुआ। इसे 2 से भाग दिया। घंटों की आधी राशि व मिनटों की चौथाई अंश कलादि ले लें। यह सीधा प्रकार है। अतः 4.15^0 राशि तथा $13^0.15'$ कुल $4.28^0.15'$ मिला। इसे उस दिन के सूर्य $9.11^0.15'$ में जोड़ने से $2.9^0.30'$ भाव लग्न स्पष्ट हुआ।

होरालग्न साधन :–

होरालग्नं प्रवक्ष्येऽहं श्रृणु त्वं द्विजपुंगव ! ।
सार्धद्विघटिका तुल्यं तथासूर्योदयात् सदा ।। 4 ।।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ।।
इष्ट घट्यादिकं द्विघ्नं पंचाप्तं भादिकं फलम् ।।
योज्यमौदयिके सूर्ये होरा लग्नं स्फुटं भवेत् ।। 5 ।।

हे द्विजश्रेष्ठ मैत्रेय ! अब मैं होरा लग्न का साधन बताता हूँ। सूर्योदय से आरम्भ करके $2\frac{1}{2}$ घड़ी अर्थात् 1 घंटा काल का होरा लग्न क्रमशः उदित होता है। इसी लग्न का नाम 'होरा' है। यह षड्वर्गों में पठित होरा नहीं है।

अपनी इष्ट घटी को 2 से गुणा कर 5 का भाग देने से लब्धि को उदयकालिक सूर्य में जोड़ने से होरालग्न स्पष्ट होता है।

इष्ट घंटा मिनट में जितने घंटे हों, वे होरा राशि हैं । मिनटों के आधे अंश होते हैं । अतः हमारे उदाहरण में 9.53 घंटात्मक इष्ट है । इसमें 9 राशि व $26^0.30'$ अंश को सूर्य स्पष्ट 9.11.15 में जोड़ा तो $7.7^0.45'$ होरा लग्न स्पष्ट है ।

घटी लग्न साधन –

कथयामि घटी लग्नं श्रृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।

सूर्योदयात्समारभ्य जन्मकालावधिक्रमात् ।।6।।

एकैकघटिकामानं लग्नं यद्याति भादिकम् ।

तदेव घटिकालग्नं कथितं नारदादिभिः ।।7।।

राशयस्तु घटी तुल्याः पलार्धप्रमितांशकाः ।

योज्यमौदयिके भानौ घटीलग्नं स्फुटं हि तत् ।।8।।

क्रमादेषां हि लग्नानां भावकोष्ठं पृथक् लिखेत् ।

ये ग्रहा यत्र भे तत्र स्थाप्या वै गणितागताः ।।9।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब आपको घटी लग्न का साधन बता रहा हूँ। सूर्योदय से आरम्भ करके जन्मेष्ट तक एक–एक घड़ी अर्थात् 24-24 मिनट का एक घटी लग्न होता है । इसी को नारदादि ऋषियों ने घटी लग्न कहा है । इष्ट की घड़ियों के बराबर राशि व पलों के बराबर अंश लेकर सूर्य में जोड़ने से घटी लग्न स्पष्ट होता है ।

इन सब लग्नों का चक्र राशिचक्र के समान बनाकर उनमें ग्रहों को उनकी गणितागत राशियों में स्थापित करने से लग्न चक्र बन जाते हैं ।

हमारा पूर्वोक्त इष्ट 9.53 घंटात्मक है । इसकी मिनट बनाई तो 593 मिनट मिलीं । इसे 24 से भाग दिया तो 24 राशियाँ मिलीं । इसे 0 राशि समझना होगा । शेष 17 मिनट हैं । इसके अंश $21^0.15'$ हुए । अतः सूर्य स्पष्ट $0.21^0.15' + 9.11^0.15' = 10.2^0.30'$ घटी लग्न स्पष्ट हुआ ।

भाव लग्न $2.9^0.30'$

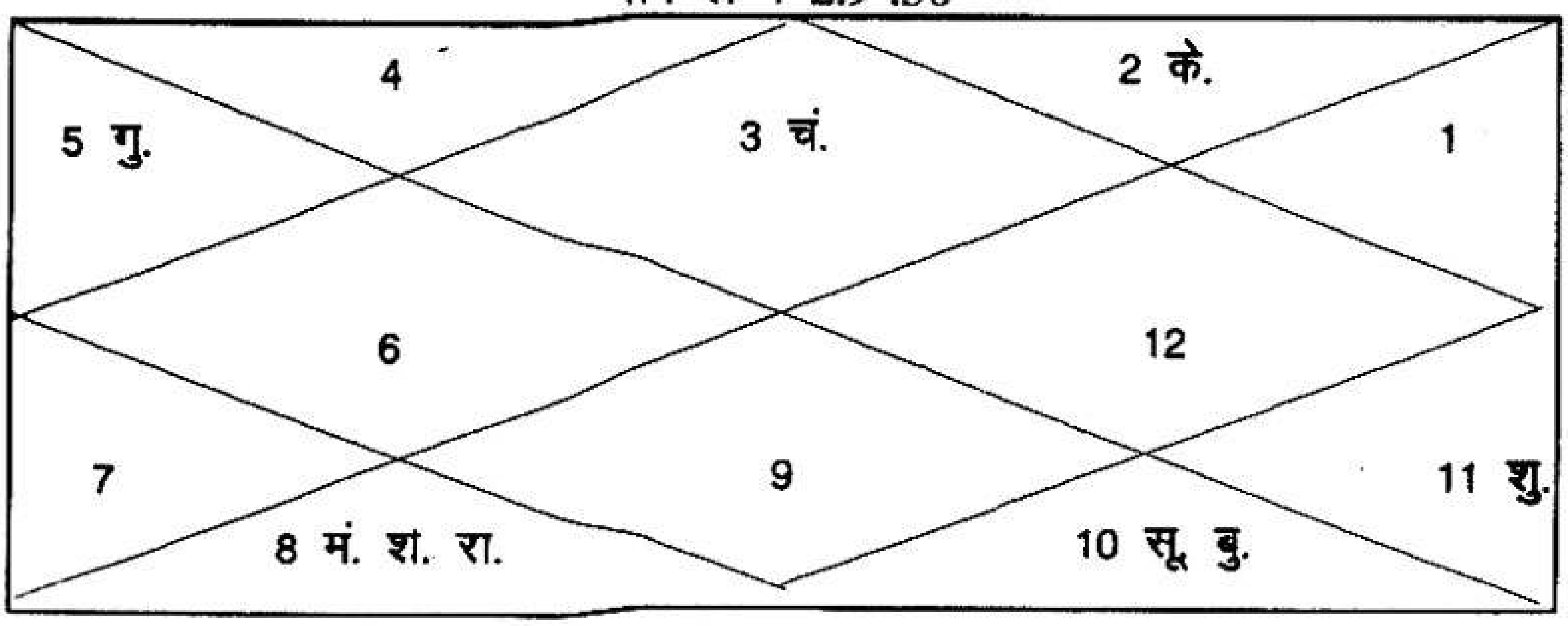

होरा लग्न 7.7^0.45′

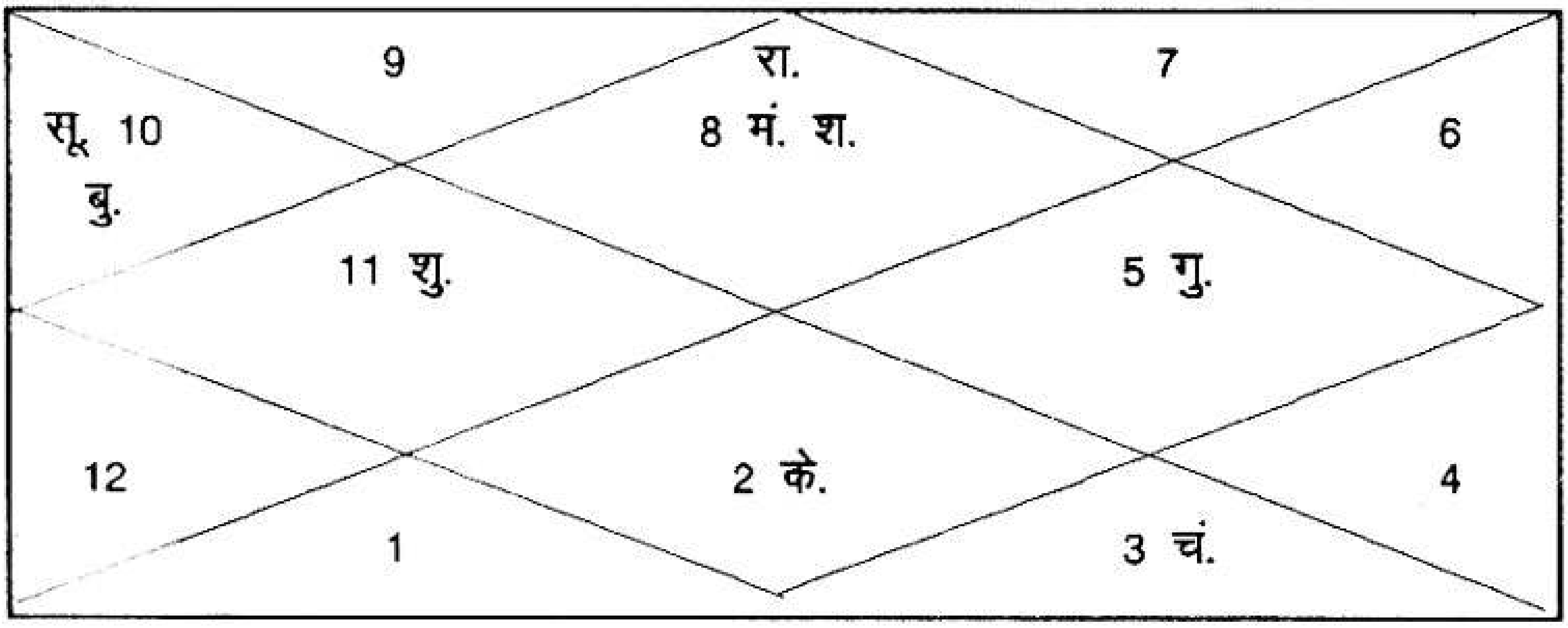

घटी लग्न 10.2^0.30′

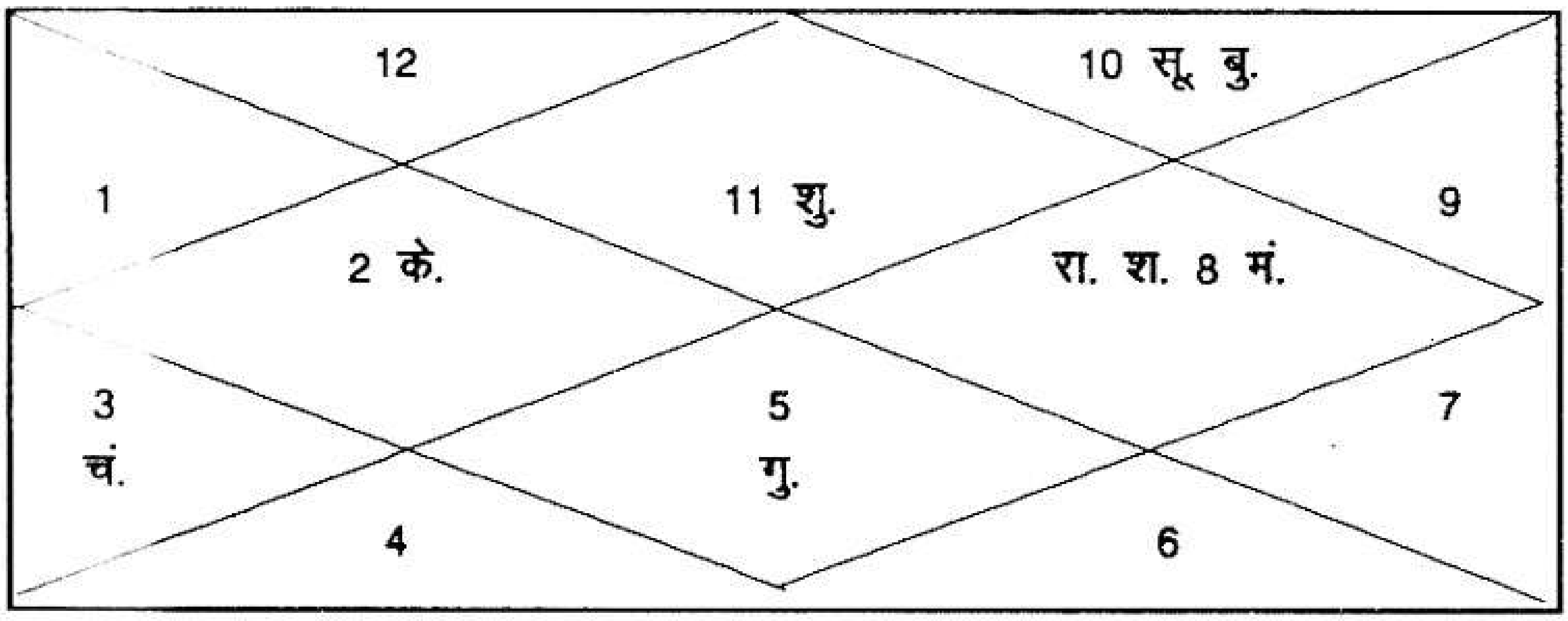

भावस्पष्ट की विधि :-

उक्ता लग्नादिभावानां दीप्तांशास्तिथिसम्मिताः ।
तस्माद् भावात् पुरः पृष्ठे तिथ्यंशैस्तत्फलं स्मृतम् ।। 10 ।।
लग्नात् तिथ्यंशतः पूर्वं भावारम्भः प्रजायते ।
तिथ्यंशैः परतस्तस्य पूर्तिसन्धी च तौ स्मृतौ ।। 11 ।।
भावारम्भो फलारम्भो पूर्णं भावसमे ग्रहे ।
फलं शून्यं च भावान्ते ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ।। 12 ।।

इन लग्नों में 15^0-15^0 अंश दीप्तांश कहे गए हैं। प्रत्येक लग्न स्पष्ट से 15^0 अंश पीछे से भाव शुरू होकर 15^0 अंश आगे तक कुल 30^0 का प्रत्येक भाव होता है। इस तरह लग्न स्पष्ट में 1-1 रशि जोड़ने से क्रमशः लग्नादि भाव तथा 15^0-15^0 जोड़ने से भावों की सन्धियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। यह विधि फलादेश में आज भी उपयोगी है।

भाव स्पष्ट के बराबर ग्रह स्पष्ट रहने से पूर्ण फल तथा भाव की आरम्भ सन्धि से फल की क्रमशः वृद्धि होती है। अन्तिम सन्धि के बराबर

ग्रह रहने से वह निष्फल रहता है। यदि बीच में ग्रह स्पष्ट पड़े तो अनुपात करना चहिए।

भाव विचार की सामान्य विधि :–

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भावाः संज्ञानुरूपतः ।
फलदाः शुभसंदृष्टा युक्ता वा शोभनप्रदाः ।। 13 ।।
पापदृष्टयुता भावाः कल्याणेतरदायकाः ।
नितरां शत्रुनीचस्थैर्न मित्रोपगतैश्च तैः ।।
सौम्यैर्दृष्टयुताभावा ग्रहवीर्यात्फलप्रदाः ।। 14 ।।

बारहो भावों में जो जो भाव शुभग्रहों से युक्त दृष्ट होंगे उनका शुभ फल व पापयुक्त दृष्ट का अशुभ फल होगा। जिस भाव में अति शत्रु की राशि गत, नीच या मित्रग्रहों से रहित अर्थात् शत्रुयुक्त ग्रह होंगे, उस भाव की भी हानि होगी। इसके विपरीत शुभ दृष्ट युक्त भाव द्रष्टा या स्थित ग्रह के बलानुसार फल देंगे।

भाव स्पष्ट की अन्य विधि :–

लग्नं सुखात् सुखं कामात् कामं खात् खं च लग्नतः ।
त्र्यंशमेकद्विगुणितं युंज्याल्लग्नादिषु क्रमात् ।। 15 ।।
पूर्वापरयुतेरूर्ध्वं सन्धिः स्याद् भावयोर्द्वयोः ।
एवं द्वादशभावाः स्युर्भवन्ति हि ससन्धयः ।। 16 ।।

लग्न स्पष्ट में से दशम भाव को, चतुर्थ में से लग्न को, सप्तम में से चतुर्थ को, दशम में से सप्तम को, लग्न में से दशम को घटा लें। अथवा प्रचलित विधि से लग्न में से दशम को घटाकर शेष का छठा भाग षष्ठांश क्रमशः जोड़ते जाने से बारह भाव व बारह संधियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

यह विधि आजकल सर्वत्र प्रचलित है। याम्योत्तर वृत्तीय दशम भाव साधन करके दशम + 6 राशि = चतुर्थ भाव तथा लग्न + 6 राशि = सप्तम भाव होता है।

ऊपर बताए गए प्रकार से किसी भी केन्द्र भाव से आप जोड़ना शुरू करें, फल समान ही होगा। पाराशर होरा के संग्रह के समय ये विधियाँ चलन में आ चुकी थीं। भावस्पष्ट सम्बन्धी ये श्लोक हमें एक प्राचीन ग्रन्थ में 'पाराशर होरा' नाम से मिले थे। पुनश्च इसका समर्थन किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थ से नहीं होता है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां विशेष–
लग्नाध्यायः पंचमः ।। 5 ।।

6

।। अथ वर्णददशाध्यायः ।।

वर्णद दशा :–

वर्णदाख्य दशां भानां कथयामि तवाग्रतः ।
यस्या विज्ञानमात्रेण ज्ञेयमायुर्भवं फलम् ।। 1 ।।
ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात् ।
समलग्न प्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः ।। 2 ।।
मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत् सुधीः ।
तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः क्रमात् ।। 3 ।।
ओजत्वेन समत्वेन सजातीये उभे यदि ।
तर्हि संख्ये योजनीये वैजात्येतु वियोजयेत् ।। 4 ।।
मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः ।

हे मैत्रेय ! अब मैं तुम्हें राशियों की वर्णदशा कहता हूँ। इस वर्ण दशा से मनुष्य की आयुर्दाय का फल स्पष्ट हो जाता है।

यदि लग्न राशि विषम हो तो मेष वृष, मिथुन आदि राशि क्रम से गिनें। यदि लग्न राशि सम हो तो मीन, कुम्भ, मकर आदि विपरीत क्रम से गिनें।

इस प्रकार क्रम व व्युत्क्रम से यथावसर जन्मलग्न तक गिनें। इसी तरह होरा लग्न तक भी गिनें।

यदि होरा लग्न व जन्म लग्न दोनों विषम या दोनों सम हों तो प्राप्त राशियों को जोड़ें। यदि एक सम व एक विषम हो तो दोनों का परस्पर अन्तर करें।

इस प्रकार योग या अन्तर करने से जो संख्या मिले, वह संख्या विषम राशि हो तो मेषादि क्रम से तथा सम हो तो मीनादि उत्क्रम से गिनें। इस तरह प्राप्त राशि 'वर्णद' कहलाती है।

हमारे उदाहरण में जन्म लग्न स्पष्ट $3.2^0.48'$ सम राशि है। अतः मीन से उल्टे क्रम से गिनने पर 9 संख्या मिली। होरा लग्न स्पष्ट $7.7^0.45'$ भी सम है। अतः मीन से गिनने पर 5 संख्या मिली। दोनों संख्याएँ विषम हैं। अतः दोनों का योग 14 मिला। यह संख्या सम है। अतः मीन से उल्टे क्रम से गिनने पर 14वीं राशि 'कुम्भ' वर्णद राशि हुई।

इस लग्न को स्पष्ट करने के लिए भी यही विधि अपनाएँ। लग्न विषम हो तो वही तथा सम हो तो 12 में से घटाकर शेष को ग्रहण करें। पूर्ववत् सम–विषम होने से योग या अन्तर करने पर राश्यादि स्पष्ट वर्णद होता है। लग्न व होरा सम हैं। अतः 12 – लग्न 3.2.48 = $8.27^0.12'$ मिली। 12 राशि–होरा $7.7^0.45' = 4.22^0.15'$ मिला। दोनों ही विषम हैं। अतः दोनों का योग $1.19^0.27'$ है। यह सम होने से इसे 12 में से घटाने पर $10.10^0.33'$ वर्णद लग्न स्पष्ट है।

एक सरल प्रकार :–

(i) जन्म लग्न व होरा लग्न स्पष्ट को जोड़ लें। यदि यह विषम योगफल है तो यही 'वर्णद स्पष्ट' हैं।

(ii) यदि उक्त योगफल सम हो तो योगफल को 12 में से घटाकर शेष 'वर्णद स्पष्ट' होगा।

जन्म लग्न $3.2^0.48'$ + होरा लग्न $7.7^0.45' = 10.10^0.33'$ मिला। यह योगफल स्वयं ही विषम (कुम्भ राशि) है, अतः यही 'वर्णद लग्न स्पष्ट' है। पहले प्रकार से भी लम्बी प्रक्रिया से यही फल मिला था।

ध्यान रखिए, वर्णद लग्न सदैव विषम राशि होता है। यदि यह सम आए तो 12 में से घटाकर इसे विषम ही बनाया जाता है।

(iii) इस प्रकार से प्राप्त वर्णद, लग्न का वर्णद होता है। अन्य भाव स्पष्टों के आधार पर अन्य भावों का वर्णद भी जाना जा सकता है।

(iv) इसी वर्णद लग्न के आधार पर वर्णद दशा की गणना होती है।

उदाहरणार्थ जन्म लग्न से द्वितीय भाव स्पष्ट (लग्न स्पष्ट + 1 राशि) तथा होरा लग्न से द्वितीय भाव स्पष्ट का योग करके पूर्वोक्त प्रकार से धनभाव का वर्णद जाना जा सकेगा।

।। वर्णद लग्न ।। $10.10^0.33'$

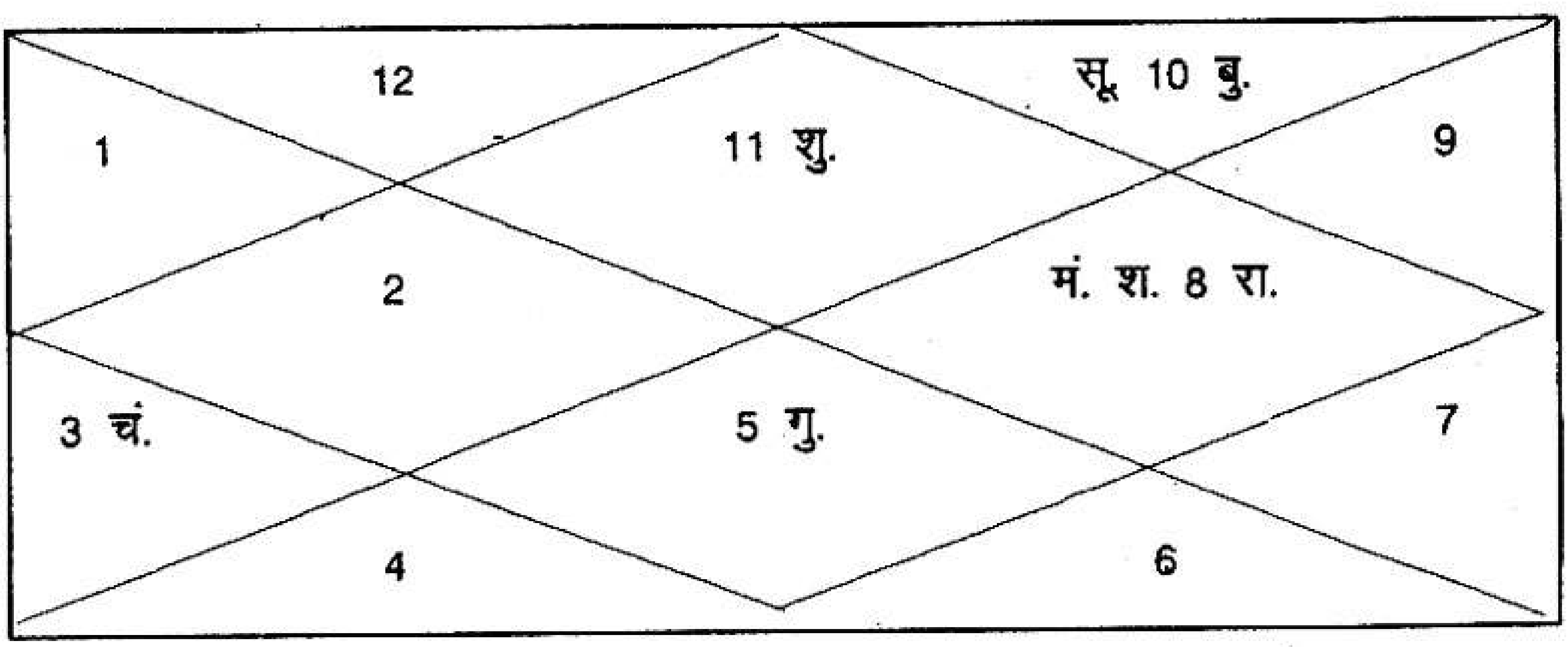

वर्णद का प्रयोजन :–

एतत्प्रयोजनं वक्ष्ये शृणु त्वं द्विजपुंगव ! ।
होरालग्नभयोर्नेया सबलाद् वर्णदा दशा ।। 5 ।।
यत्संख्यो वर्णदो लग्नात् तत्संख्याक्रमेण तु ।
क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशा स्यादोजयुग्मयोः ।।6 ।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं वर्णद का प्रयोजन कहता हूँ। होरा व लग्न में जो बलवान् हो उसी से गिनकर वर्णद दशा जानी जाती है। लग्न से वर्णद राशि जितनी संख्या आगे या पीछे (सम–विषम भेद से क्रम व व्युत्क्रम गणना) पड़े, उतने ही वर्ण लग्न की 'वर्षद दशा' होती है। 'सबलात्' के स्थान पर 'दुर्बलात्' पाठ भी मिलता है।

अन्य भावों की दशा भी तत्तत् वर्णदों से जानी जा सकती है। वर्णद में भाव स्पष्ट 2-2 राशि आगे बढ़ते हैं। अतः लग्न वर्णद स्पष्ट में 2-2 राशि जोड़ने से अन्य भावों के भी वर्णद स्पष्ट हो जाते हैं। 'वर्णदान्ताः समाः' ऐसा जैमिनि मुनि ने कहा है, अतः भाव राशि से वर्णद राशि तक क्रम व्युत्क्रम से गिनकर जितनी संख्या मिले, उतने ही वर्ष उस राशि की दशा होती है। वर्ण दशा राशियों की होती है, ग्रहों की नहीं। विशेष विवरण हमने अपने 'जैमिनि सूत्रम्, शान्तिप्रिय भाष्य में भी दिया है।

हमारे उदाहरण में वर्णद स्पष्ट $10.10^{0}.33'$ है। इसमें 2-2 राशि जोड़ते जाने से अन्य भावों के भी वर्णद मिल जाएँगे।

।। द्वादश भाव वर्णद स्पष्ट ।।

I	$10 . 10^{0} . 33'$	VII
II	0 . 10 . 33	VIII
III	2 . 10 . 33	IX
IV	4 . 10 . 33	X
V	6 . 10 . 33	XI
VI	8 . 10 . 33	XII

हमारे उदाहरण में लग्न व होरा में से बलवान् का निर्णय करना है।

(i) 'अग्रहात् सग्रहो ज्यायान्' के नियमानुसार ग्रह रहित राशि से ग्रह युक्त राशि बली है।

(ii) ग्रहयुक्त से अधिक ग्रह युक्त राशि बली है। अधिक ग्रह युक्त राशि से भी स्वक्षेत्रोच्चादि युक्त राशि बली है।

(iii) यदि तब भी निर्णय न हो तो राशियों का निसर्ग बल देखें। चर स्थिर व द्विस्वभाव राशियाँ क्रमशः उत्तरोत्तराधिक निसर्ग बली होती हैं।

हमारे उदाहरणों में लग्न व होरा लग्न में, होरा बली है। उसमें कई ग्रह हैं तथा लग्न में कोई ग्रह नहीं है। अतः होरा लग्न की राशि वृश्चिक से व्युत्क्रम से राशियों की दशाएँ होंगीं।

दशा वर्ष जानने के लिए होरा राशि वृश्चिक से वर्णद राशि कुम्भ तक विपरीत क्रम से गिना तो 9 वर्ष मिले। अतः वृश्चिक दशा 9 वर्ष की होगी।

ततः तुला राशि का दशा काल जाना। विषम तुला राशि होरा लग्न में द्वादशस्थ है। अतः द्वादश वर्णद धनु तक गिनने पर तीन वर्ष मिले।

कन्या राशि से एकादशस्थ वर्णद तुला है। व्युत्क्रम से 12 वर्ष मिले। सिंह राशि से दशमस्थ वर्णद सिंह ही है। अतः 19 वर्ष मिले। कर्क राशि नवमस्थ वर्णद मिथुन है। व्युत्क्रम से 12 वर्ष मिले। मिथुन राशि से अष्टमस्थ वर्णद मेष तक 11 वर्ष हैं। वृष राशि से सप्तमस्थ वर्णद कुम्भ गिनकर 4 वर्ष मिले। मेष राशि से षष्ठस्थ वर्णद धनु तक 9 वर्ष, मीन राशि से पंचम वर्णद तुला तक 6 वर्ष, कुम्भ राशि से चतुर्थस्थ वर्णद सिंह तक 7 वर्ष, मकर राशि से तृतीयस्थ वर्णद मिथुन तक 8 वर्ष, धनु राशि से द्वितीयस्थ वर्णद मेष तक 5 वर्ष मिले। इनका दशाचक्र बना लिया।

।। वर्णद दशाचक्र ।। (उदाहरण)

दशेश	वृश्चि	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथु.	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु
वर्ष	9	3	12	1	12	11	4	9	6	7	8	5
तिथि 25.1.56	25.1.1965	25.1.1968	25.1.1980	25.1.1981	25.1.1993	25.1.2004	25.1.2008	25.1.2017	25.1.2023	25.1.2030	25.1.2038	25.1.2043

फल विचार के नियम–

पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके ।
यदि स्यात् तर्हि तद्राशीपर्यन्तं तस्य जीवनम् ।। 7 ।।
रुद्रशूलेयथैवायुर्मरणादिर्निरूप्यते ।
तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसंगमे ।। 8 ।।
वर्णदात् सप्तमाद्राशेः कलत्रायुर्विचिन्तयेत् ।
एकादशादग्रजस्य तृतीयात्तु यवीयसः ।। 9 ।।
सुतस्य पंचमे विद्यान्मातुश्च तुर्यभावतः ।।
पितुश्च नवमाद्भावादायुरेवं विचिन्तयेत् ।। 10 ।।
शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् ।

वर्णद लग्न से त्रिकोणों में पापग्रहों का योग या दृष्टि अशुभ होती है । यदि ऐसा हो तो वर्णद से त्रिकोण राशि की दशा तक ही मनुष्य का जीवन होता है । जिस प्रकार रुद्रग्रह की शूल दशा से आयु व मरण का विचार होता है उसी तरह वर्णद दशा से भी करना चाहिए । अर्थात् वर्णद त्रिकोण में पापग्रह रहने पर त्रिकोण राशि दशा तक ही जीवन होता है ।

वर्णद लग्न के सप्तम भाव से पत्नी की, ग्यारहवें भाव से बड़े भाई की, तीसरे भाव से छोटे भाई की, पुत्र की पंचम भाव से, माता की चतुर्थ से, पिता की नवें भाव से आयु देखनी चहिए ।

प्रबल शूल राशि की दशा में विशेष अरिष्ट समझना चाहिए ।

जिन भावों से त्रिकोण में पापग्रह की दृष्टि या योग पड़े, उस भाव से द्योतित सम्बन्धी को उस त्रिकोण राशि की दशा में कष्ट या मरण समझना चाहिए । रुद्रग्रह व शूल दशादि पारिभाषिक शब्द जैमिनि मत से लिए गए हैं । जैमिनि ने पराशर से विचार लिया या पराशर ने जैमिनि से यह कहना कठिन है, लेकिन दोनों ही महर्षि ज्योतिष के शिरोमणि हैं । शूल दशा के विषय में आगे दशा भेद में बताया जाएगा । 'पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः' इस परिभाषा से 1.7 भावों से अष्टम राशि देखनी चाहिए । दोनों में जो बलवान् हो, उस राशि का स्वामी रुद्रग्रह होता है । लेकिन जन्म लग्न सम हो तो व्युत्क्रम से अष्टमेश द्वितीयेश अर्थात् 6.12 भावेश तथा लग्न विषम हो तो 2.8 भावेशों को देखना होगा ।

प्रस्तुत उदाहरण में वर्णद राशि व त्रिकोणों में पापग्रह नहीं है। अतः अनिष्ट नहीं है। दृष्टि विचार में राशि दृष्टि ही ली जाएगी, ग्रहों की दृष्टि नहीं। राशि दृष्टि में सभी चर राशियाँ द्वितीयस्थ स्थिर को छोड़कर शेष तीनों स्थिरों को, स्थिर राशि द्वादशस्थ चर को छोड़कर शेष चारों को व द्विस्वभाव स्वयं को छोड़कर शेष द्विस्वभावों को देखती है तथा इन राशियों में स्थित ग्रह भी तब इस प्रसंग में इसी प्रकार देखते हैं। इस विधि से मंगल शनि की पंचम पर दृष्टि सिद्ध नहीं होती है।

जातक की पत्नी की आयु का विचार करते हैं। सप्तम से त्रिकोणों में वर्णद लग्न में पापग्रह नहीं है। लेकिन सप्तम से त्रिकोण मेष राशि पर शनि व मंगल की दृष्टि है। अतः मेष दशा में पत्नी को कष्ट होगा।

इसी प्रकार अन्य सम्बन्धियों का भी विचार करना चाहिए। नवम से त्रिकोणों में पापदृष्टि व पापयोग नहीं है। अतः पिता का साया लम्बे समय तक रहेगा। पुनश्च हमारे विचार से जातक का ही विचार यहाँ मुख्यतः होना चाहिए।

वर्णद दशा में अन्तर्दशा :–

एवं तन्वादिभावानां कर्त्तव्या वर्णदा दशा।
पूर्ववच्च फलं ज्ञेयं देहिनां च शुभाशुभम्।। 11।।
ग्रहाणां वर्णदा नैव राशीनां वर्णदादशा।
कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद् वदेत्।। 12।।
एवमन्तर्दशादिं च कृत्वा तेन फलं वदेत्।
क्रमव्युत्क्रमभेदेनलिखेदन्तर्दशामपि। 13।।

इसी विधि से द्वादश भावों की वर्णद दशा जाननी चाहिए। उस दशा से प्राणियों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए। वर्णद दशा ग्रहों की नहीं होती, केवल राशियों की होती है।

सम्पूर्ण दशामान को 12 से भाग देने पर अन्तर्दशा का मान आ जाता है। इस अन्तर्दशा चक्र को भी पूर्वोक्त दशा क्रमानुसार लिखकर फल बताना चाहिए। विशेष विचार के लिए हमारा जैमिनिसूत्र शान्तिप्रिय भाष्य पृ० 25-31 भी देखें।

उदाहरण में वर्तमान में मिथुन राशि की दशा है। इसका मान 11 है।

अतः 11 ÷ 12 = 330 दिन या 11 मास की एक अन्तर्दशा रहेगी।

।।मिथुनान्तर्दशा चक्र ।।

	मि.	वृ.	मे.	मी.	कु.	म.	धनु.	वृश्चि.	तुला	क.	सिं.	कर्क
मास	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11	11
25.1.93	25.12.93	25.11.94	25.10.95	25.9.96	25.8.97	25.7.98	25.6.99	25.5.2000	25.4.2001	25.3.2002	25.2.2003	25.1.2004

वर्णद लग्न में जो राशि बलवान् हो, शुभयुक्त हो, शुभ दृष्ट हो या निसर्ग शुभ ग्रह की राशि हो तथा जिससे 5.9 में भी उक्त प्रकार से शुभयोग दृष्टि आदि बने, उस राशि की दशान्तर्दशा में जन्म लग्न में उस राशि से द्योतित भाव सम्बन्धी बातों की वृद्धि होगी। अन्यथा भाव हानि समझनी चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं० सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां वर्णददशाध्यायः षष्ठः ।। 6 ।।

7

।। अथ षोडशवर्गाध्यायः ।।

वर्गान् षोडश यानाह ब्रह्मालोक पितामहः ।
तानहं सम्प्रवक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रूयतामिति ।। 1 ।।
क्षेत्रं होरा च द्रेष्काणस्तुर्यांशः सप्तमांशकः ।
नवांशो दशमांशश्च सूर्यांशः षोडशांशकः ।। 2 ।।
विंशांशो वेद बाह्वंशो भांशस्त्रिंशांशकस्ततः ।
खवेदांशोऽक्षवेदांशः षष्ठ्यंशश्च ततः परम् ।। 3 ।।

हे मैत्रेय ! ब्रह्माजी ने पहले जो 16 वर्गो का उल्लेख किया है, अब मैं, उन्हें कहता हूँ, ध्यान से सुनो।

राशि (क्षेत्र) होरा, द्रेष्काण, चतुर्थांश, सप्तमांश, नवांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, विंशांश, चतुर्विंशत्यंश, सप्तविंशांश, त्रिंशांश, खवेदांश, अक्षवेदांश षष्ठ्यंश ये 16 वर्ग होते हैं।

क्षेत्र व होरा विवेक :–

तत्क्षेत्रं तस्य खेटस्य राशेर्यो यस्य नायकः ।
सूर्येन्द्वोर्विषमे राशौ समे तद्विपरीतकम् ।। 4 ।।
पितरश्चन्द्रहोरेशा देवा सूर्यस्य कीर्तिताः ।
राशेरर्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृता ।। 5 ।।
मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ।।

जो ग्रह राशि का स्वामी है, वही उस ग्रह का क्षेत्र या ग्रह कहलाता है ।

विषम राशियों में पूर्वार्ध 15^0 तक सूर्य की तथा आगे 16^0 से30^0 तक चन्द्रमा की होरा होती है । सम राशियों में पहले अर्ध भाग में चन्द्रमा की तथा शेष उत्तरार्ध में सूर्य की होरा होती है । चन्द्र होरा के स्वामी पितर तथा सूर्य होरा के स्वामी देवता होते हैं ।

राशि का अर्धभाग होरा कहलाता है । इस प्रकार बारह राशियों में कुल 24 होरा होती हैं । सभी राशियों में मेष से आरम्भ करके दो बार सम्पूर्ण राशि चक्र की आवृत्ति हो जाती है ।

श्लोक संख्या 5 जैमिनि मत की वृद्ध कारिकाओं में भी यथावत् मिलता है । इसी आधार पर यहाँ प्रोक्त मत परस्पर विरोधी प्रतीत होता है । पहले सूर्य व चन्द्र की होरा कहकर, बाद में मेषादि राशियों की होरा कह दी है । इसका आशय जैमिनीय मत में तो यही लिया जाता है कि मेष में पहली होरा मेष की, दूसरी होरा वृष की, वृष में पहली होरा मिथुन की तथा दूसरी होरा कर्क की इत्यादि प्रकार से होराएँ होती हैं ।

प्रचलित मतानुसार विषम राशियों में पहली होरा सूर्य की समझ कर 5 राशि लिख दी जाती हैं तथा उत्तरार्ध में 4 राशि लिखकर सब ग्रहों को स्थापित कर दिया जाता है । हमारे विचार से इसमें कोई रहस्य अवश्य है । वराहमिहिर ने भी 'होरेशर्क्षदलाश्रिते शुभकरो' इत्यादि में जो कहा है, उससे सिंह व कर्क की ही होरा हो, यह आशय नहीं निकलता है । लेकिन 'मार्त्तण्डेन्द्वोरयुति समये चन्द्रभान्वोश्च होरे'' में वराह ने स्पष्टतया प्रचलित मत का ही उल्लेख किया है । इस विषय में हम कई स्थानों पर विस्तार से लिख चुके हैं । अस्तु प्रचलित मत का समादर करते हुए यहाँ प्रचलित मत से ही विचार किया जा रहा है ।

।।होरा चक्र।।

	मेष	वृ.	मि.	कर्क	सिं.	क.	तु.	वृश्चि	धनु	म.	कु.	मी.
0-15°	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4
16° -30°	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5	चन्द्र 4	सूर्य 5

पूर्वार्ध में पड़ने से चन्द्र होरा में रहा है। इसके स्वामी पितर होंगे। सब ग्रहों को भी उनकी होराओं में स्थापित करने से निम्नोक्त चक्र तैयार हुआ।

द्रेष्काण विवेक :-

राशित्रिभागाद्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत्।।6।।
स्वपंचनवमानां च राशीनां क्रमशश्च ते।
नारदागस्तिदुर्वासा द्रेष्काणेशाश्चरादिषु।।7।।

राशि का तीसरा भाग (10°) द्रेष्काण कहलाता है। ये सम्पूर्ण राशि चक्र में 36 होते हैं। इनमें मेषादि बारह राशियों की क्रमशः तीन आवृत्तियाँ पूरी हो जाती हैं। यह एक मत है। इसका प्रयोग जैमिनीय मत में हुआ है तथा किसी प्राचीन मत की ओर इंगित करता है। अगले श्लोक में प्रचलित मत का विवरण दिया गया है।

सभी राशियों में पहला द्रेष्काण उसी राशि का, दूसरा द्रेष्काण उससे पंचम का व तीसरा द्रेष्काण नवम राशि का होता है। इन द्रेष्काणों के स्वामी क्रमशः नारद, अगस्त्य व दुर्वासा होते हैं।

।।द्रेष्काण विभाग।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
0-10° नारद	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
11°-20° अगस्त्य	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4
21°-30 ' दुर्वासा	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8

हमारे उदाहरणों में लग्न स्पष्ट पहले दस अंशों के भीतर रहने से कर्क का ही द्रेष्काण सिद्ध हुआ।

होरा चक्र

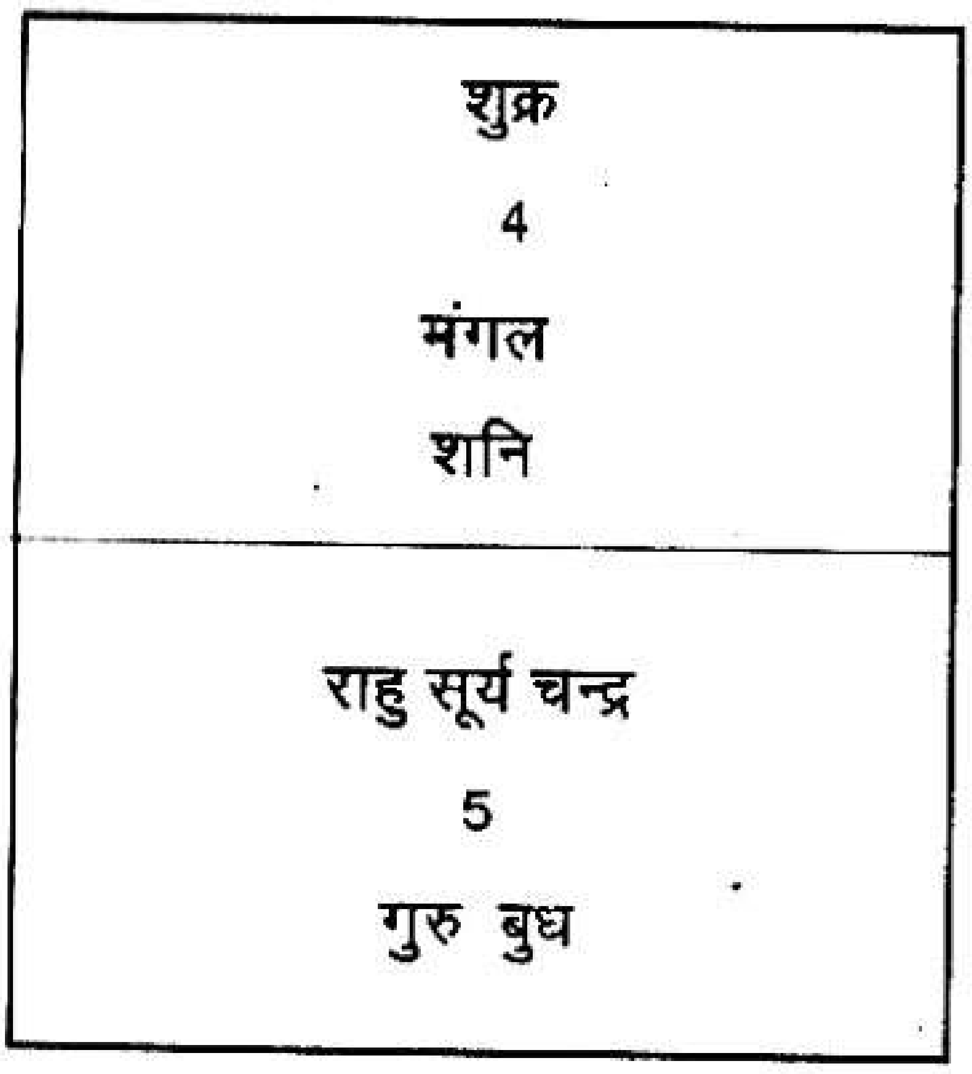

द्रेष्काणचक्र

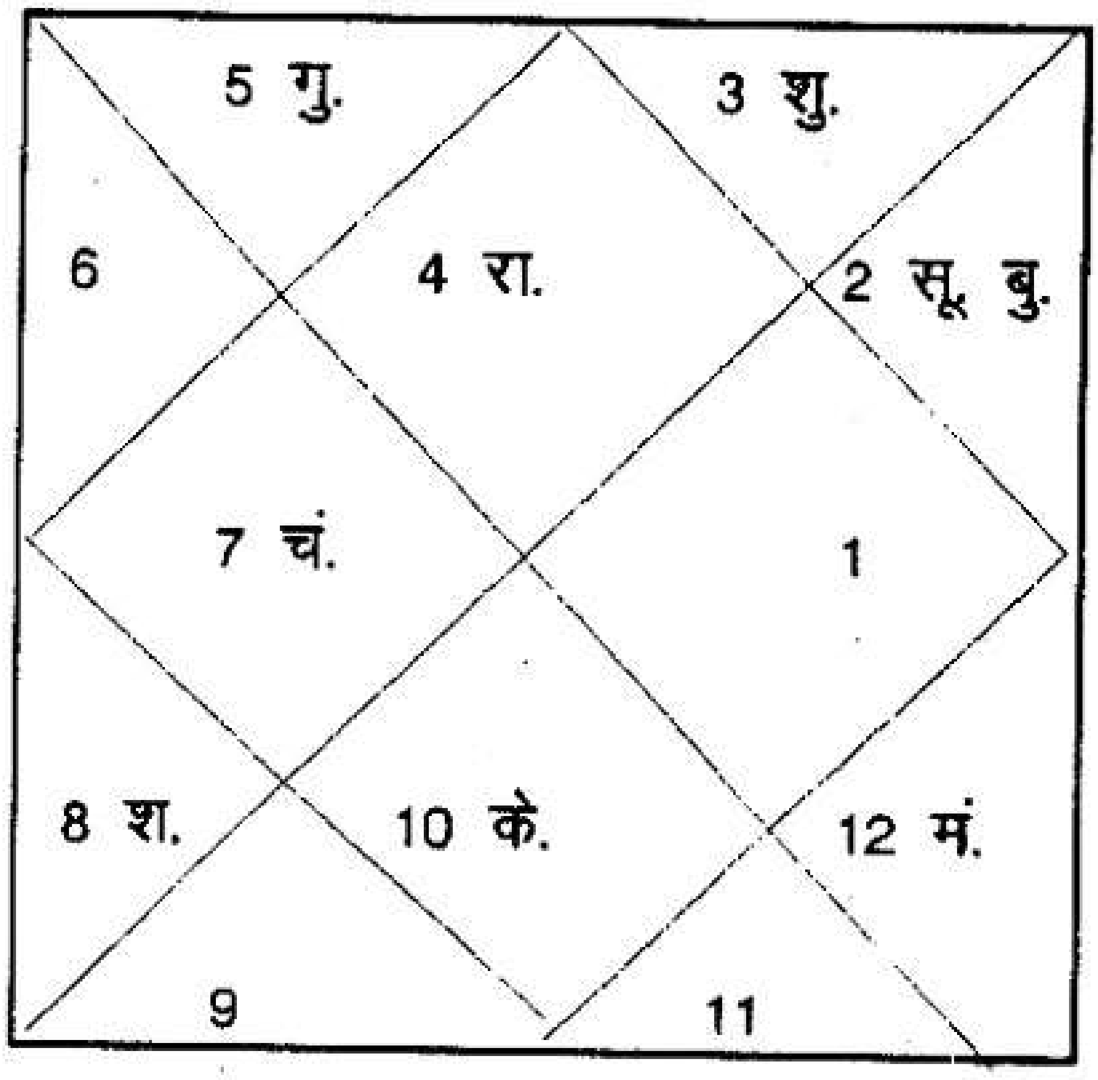

चतुर्थांश विचार :–

स्वर्क्षादिकेन्द्रपतयस्तुर्यांशेशाःक्रियादिषु ।
सनकश्च सनन्दश्च कुमारश्च सनातनः ।। 8 ।।

राशि के चतुर्थ भाग का नाम चतुर्थांश है । अतः 7°.30′ का एक चतुर्थांश हुआ । प्रथम चतुर्थांश उसी राशि का, दूसरा उससे चतुर्थ राशि का, तीसरा सप्तम राशि का व चौथा दशम राशि का होता है ।

।। चतुर्थांश प्रदर्शन ।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
7°.30′ सनक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
15°.00′ सनन्द	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3
22°.30′ कुमार	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6
30° सनातन	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9

हमारा लग्न स्पष्ट 7°.30′ अंशों के भीतर होने से पहला चतुर्थांश उसी राशि कर्क का है तथा स्वामी सनक है ।

सप्तमांश विचार :–

सप्तांश पास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः ।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षादि नायकात् ।। 9 ।।
क्षारक्षीरौ च दध्याज्यौ तथैक्षुरससम्भवः ।
मद्यशुद्धजलावोजे समे शुद्धजलादिकाः ।। 10 ।।

सप्तमांश राशि का सातवाँ भाग होता है। विषम राशियों में उसी राशि से तथा सम राशि में सातवीं राशि से गिनकर सप्तमांश जाने जा सकते हैं। $4^0.17'$ के तुल्य एक सप्तमांश होता है।

विषम राशियों में क्रमशः क्षार, क्षीर, दधि, घी, इक्षुरस, मद्य व शुद्ध-जल ये नाम हैं। सम राशियों में उल्टा क्रम अर्थात् शुद्धजल, मद्य, इक्षुरस, घी, दधि, क्षीर, क्षार होते हैं।

।। सप्तमांश चक्र ।।

	विषम राशि							सम राशि						
	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कु.	स्वामी	स्वामी	वृ.	क.	कन्या	वृ.	म.	मी.
4.17	1	3	5	7	9	11	क्षार	शुद्ध जल	8	10	12	2	4	6
8.34	2	4	6	8	10	12	क्षीर	मद्य	9	11	1	3	5	7
12.51	3	5	7	9	11	1	दधि	इक्षु रस	10	12	2	4	6	8
17.8	4	6	8	10	12	2	घृत	घृत	11	1	3	5	7	9
21.25	5	7	9	11	1	3	इक्षु रस	दधि	12	2	4	6	8	10
25.42	6	8	10	12	2	4	मद्य	क्षीर	1	3	5	7	9	11
30.00	7	9	11	1	3	5	शुद्ध जल	क्षार	2	4	6	8	10	12

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट $3.2^{\circ}.48'$ सम राशि के प्रथम सप्तमांश में पड़ता है। अतः सप्तमांश कुण्डली में प्रथम भाव राशि मकर रहेगी तथा स्वामी शुद्धजल होगा।

चतुर्थांश चक्र

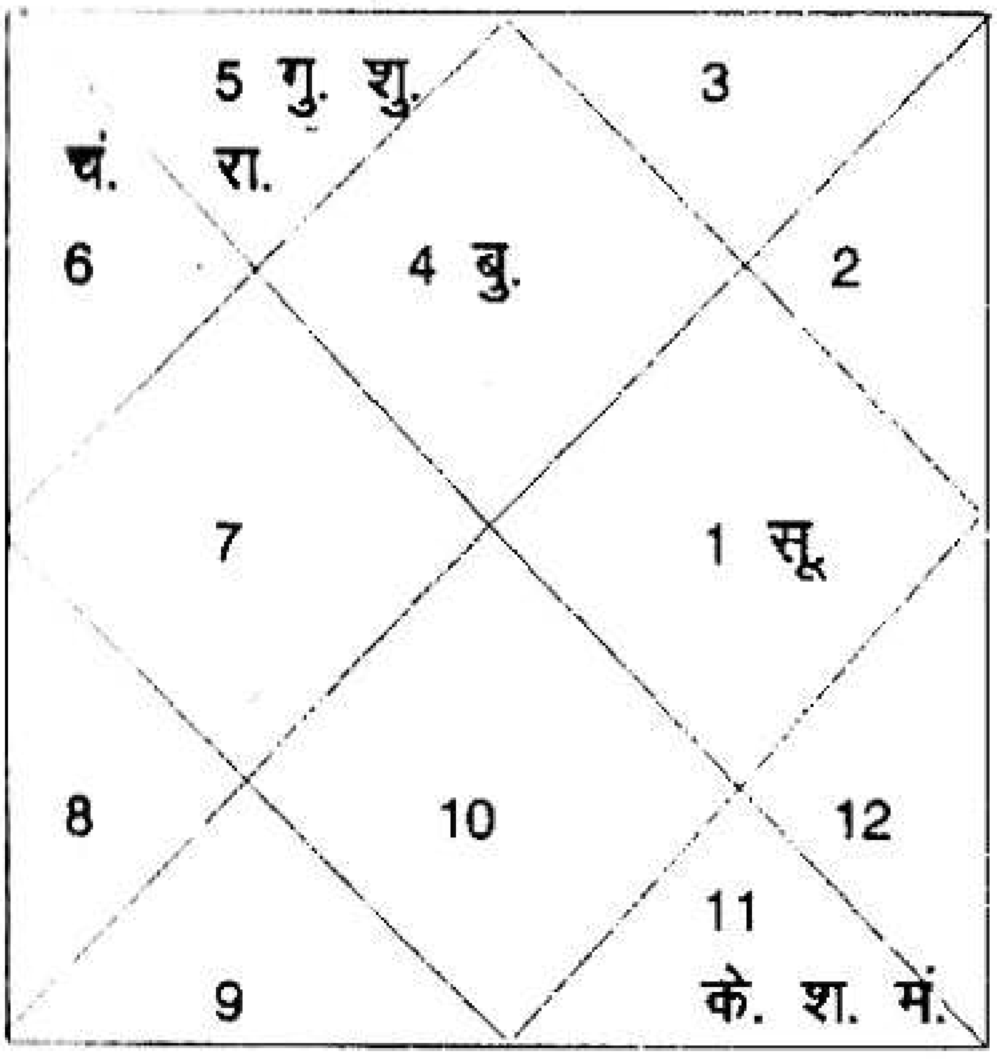

सप्तमांशचक्र

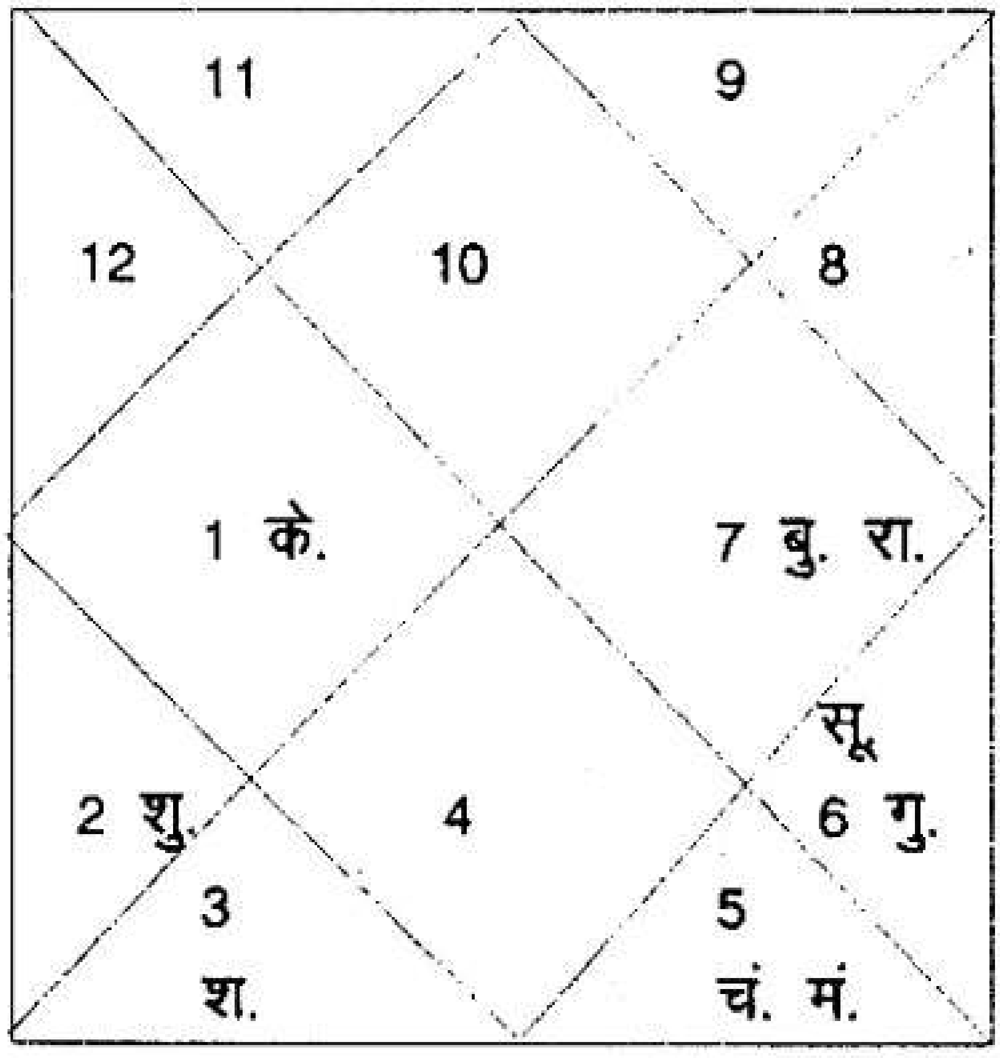

नवांश कथन :–

नवांशेशाश्चरे तस्मात् स्थिरे तन्नवमादितः ।

उभये तत्पंचमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ।

देवा नृराक्षसाश्चैव चरादिषु गृहेषु च ।। 11 ।।

राशि का नवम भाग अर्थात $30^0 \div 9 = 3^0.2'$ यह एक नवांश का मान है । चर राशियों में उसी राशि से, स्थिर में नवम राशि से व द्विस्वभाव में पंचम राशि से नवांश गणना होती है ।

चर राशि में देव, मनुष्य, राक्षस; स्थिर में मनुष्य, राक्षस, देव तथा द्विस्वभाव में राक्षस, देव, मनुष्य अधिपति होते हैं ।

।।नवांश चक्र ।।

	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
3.20	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4
	देव	मनु	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.
6.40	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5
	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
10.00	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6
	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.
13.20	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10	7
	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.
16.40	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11	8
	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
20	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12	9
	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.
23.20	7	4	1	10	7	4	1	10	7	4	1	10
	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.
26.40	8	5	2	11	8	5	2	11	8	5	2	11
	मनु	राक्ष	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव
30	9	6	3	12	9	6	3	12	9	6	3	12
	राक्ष	देव	मनु	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.	राक्ष.	देव	मनु.

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ कर्क राशि के प्रथम द्रेष्काण में पड़ता है। यह वर्गोत्तम नवांश है। जिस राशि में नवांश विचार करना हो, उसमें नवांश राशि भी वही हो जाए तो वर्गोत्तम नवांश कहलाता है।

दशमांश विचार :–

दशमांशाः स्वतश्चौजे युग्मे तन्नवमादितः।
दशपूर्वादि दिग्पाला इन्द्राग्नियम राक्षसा ।। 12 ।।
वरुणो मारुतश्चैव कुबेरेशान पद्मजाः।
अनन्तश्च क्रमादोजे समे व्युत्क्रमान्मताः ।।13 ।।

राशि का दसवाँ हिस्सा दशमांश होता है। अतः एक दशमांश का मान 3 अंश होता है। विषम राशियों में उसी राशि से व सम राशियों में नवम राशि से दशमांश गिने जाते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त ये दस दिग्पाल विषम राशियों में क्रम से तथा सम राशियों में व्युत्क्रम से स्वामी होते हैं।

।। दशमांश चक्र ।।

विषम राशि								सम राशि						
अंश	मे.	मि.	सि.	तु.	ध.	कु.	स्वामी	स्वामी	वृ.	क.	कन्या	वृ.	म.	मी.
3	1	3	5	7	9	11	इन्द्र	अनन्त	10	12	2	4	6	8
6	2	4	6	8	10	12	अग्नि	ब्रह्मा	11	1	3	5	7	9
9	3	5	7	9	11	1	यम	ईशान	12	2	4	6	8	10
12	4	6	8	10	12	2	राक्ष.	कुबेर	1	3	5	7	9	11
15	5	7	9	11	1	3	वरुण	वायु	2	4	6	8	10	12
18	6	8	10	12	2	4	वायु	वरुण	3	5	7	9	11	1
21	7	9	11	1	3	5	कुबेर	राक्ष.	4	6	8	10	12	2
24	8	10	12	2	4	6	ईशान	यम	5	7	9	11	1	3
27	9	11	1	3	5	7	ब्रह्मा	अग्नि	6	8	10	12	2	4
30	10	12	2	4	6	8	अनन्त	इन्द्र	7	9	11	1	3	5

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट तीन अंशों के भीतर रहने से सम राशि में मीन का दशमांश होगा तथा अनन्त (नाग) स्वामी रहेगा ।

नवांश कुण्डली

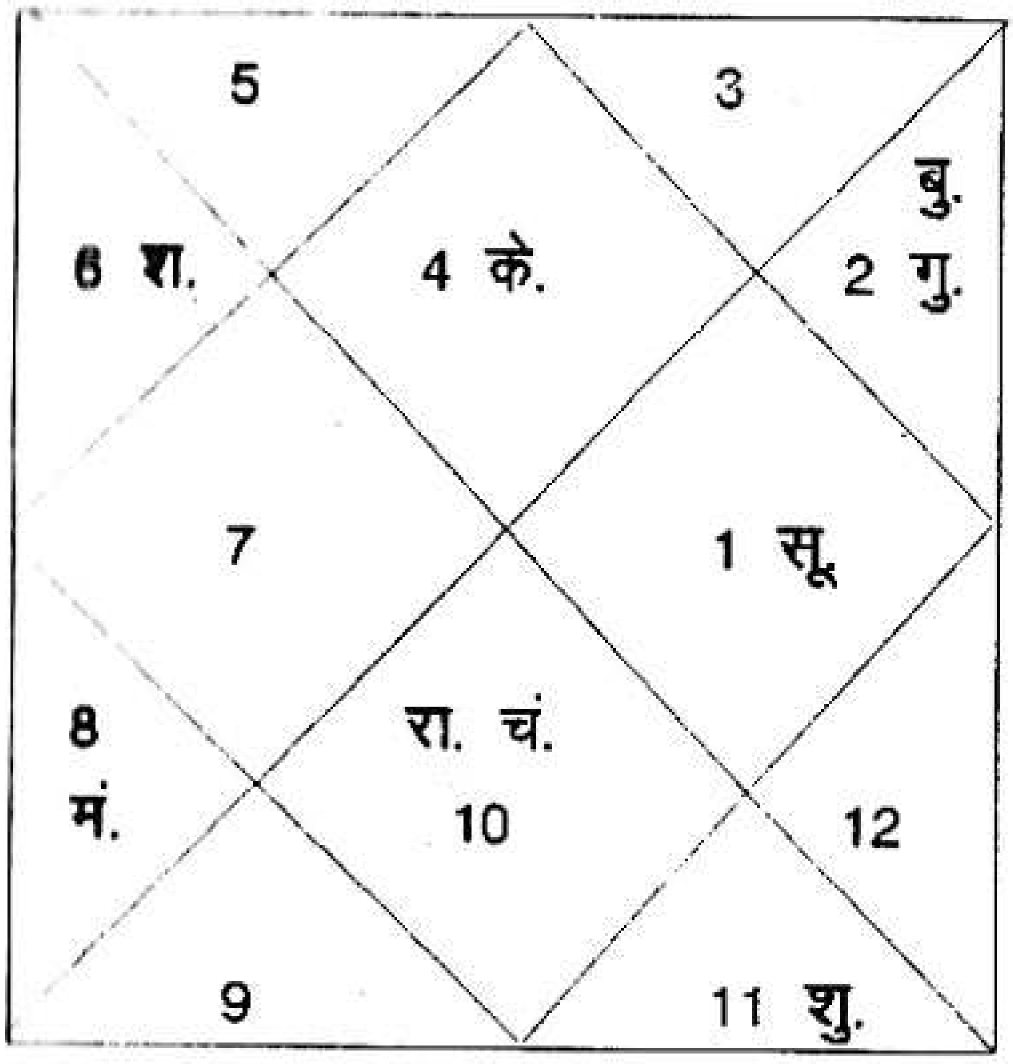

दशमांश कुण्डली

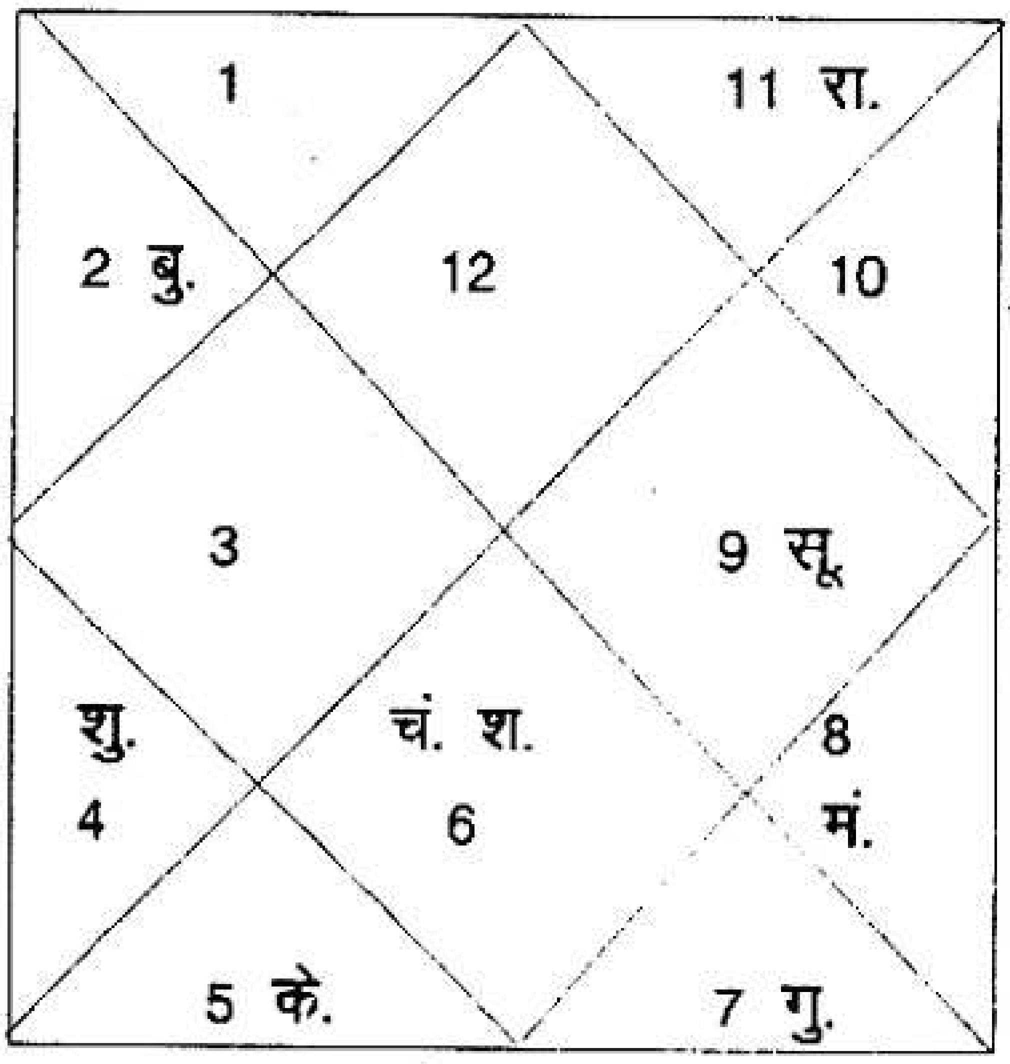

द्वादशांश विवेक :–

द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत् ।

तेषामधीशाः क्रमशो गणेशाश्वियमाहयः । । 14 । ।

राशि का बारहवाँ भाग अर्थात् 2⁰.30′ अंश का एक द्वादशांश होता है । इसकी गणना सभी राशियों में, विचारणीय राशि से ही होती है । गणेश, अश्विनी कुमार, यम, सर्प ये क्रमशः इनके स्वामी होते हैं ।

। ।द्वादशांश चक्र । ।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ दूसरे द्वादशांश में है। अतः द्वादशांश राशि सिंह व स्वामी अश्विनी कुमार है।

षोडशांश निर्णय :–

अजसिंहाश्वितो ज्ञेया षोडशांशाश्चरादिषु।

अजविष्णू हरः सूर्यो ह्योजे युग्मे प्रतीपकम्।।15।।

चर राशियों में मेष से, स्थिर में सिंह से तथा द्विस्वभाव में धनु से गिनने पर षोडशांश प्राप्त होते हैं। 30°÷16=1°.52′.30″ का एक षोडशांश होता है। इनके स्वामी क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु महेश व सूर्य विषम रशियों में तथा सम राशियों में सूर्य, महेश, विष्णु, ब्रह्मा होते हैं।

।। षोडशांश चक्र।।

विषम स्वामी	मेष कर्क तुला मकर	वृष सिहं वृश्चि. कुम्भ	मिथुन कन्या धनु मीन	सम स्वामी	अंश
ब्रह्मा	1	5	9	सूर्य	1.52.30
विष्णु	2	6	10	महेश	3.45.00
महेश	3	7	11	विष्णु	5.37.30
सूर्य	4	8	12	ब्रह्मा	7.30.00
ब्रह्मा	5	9	1	सूर्य	9.22.30
विष्णु	6	10	2	महेश	11.15.00
महेश	7	11	3	विष्णु	13.7.30
सूर्य	8	12	4	ब्रह्मा	15.0.00
ब्रह्मा	9	1	5	सूर्य	16.52.30
विष्णु	10	2	6	महेश	18.45.00
महेश	11	3	7	विष्णु	20.37.30
सूर्य	12	4	8	ब्रह्मा	22.30.00
ब्रह्मा	1	5	9	सूर्य	24.22.30
विष्णु	2	6	10	महेश	26.15.00
महेश	3	7	11	विष्णु	28.7.30
सूर्य	4	8	12	ब्रह्मा	30.0.00

द्वादशांश कुण्डली

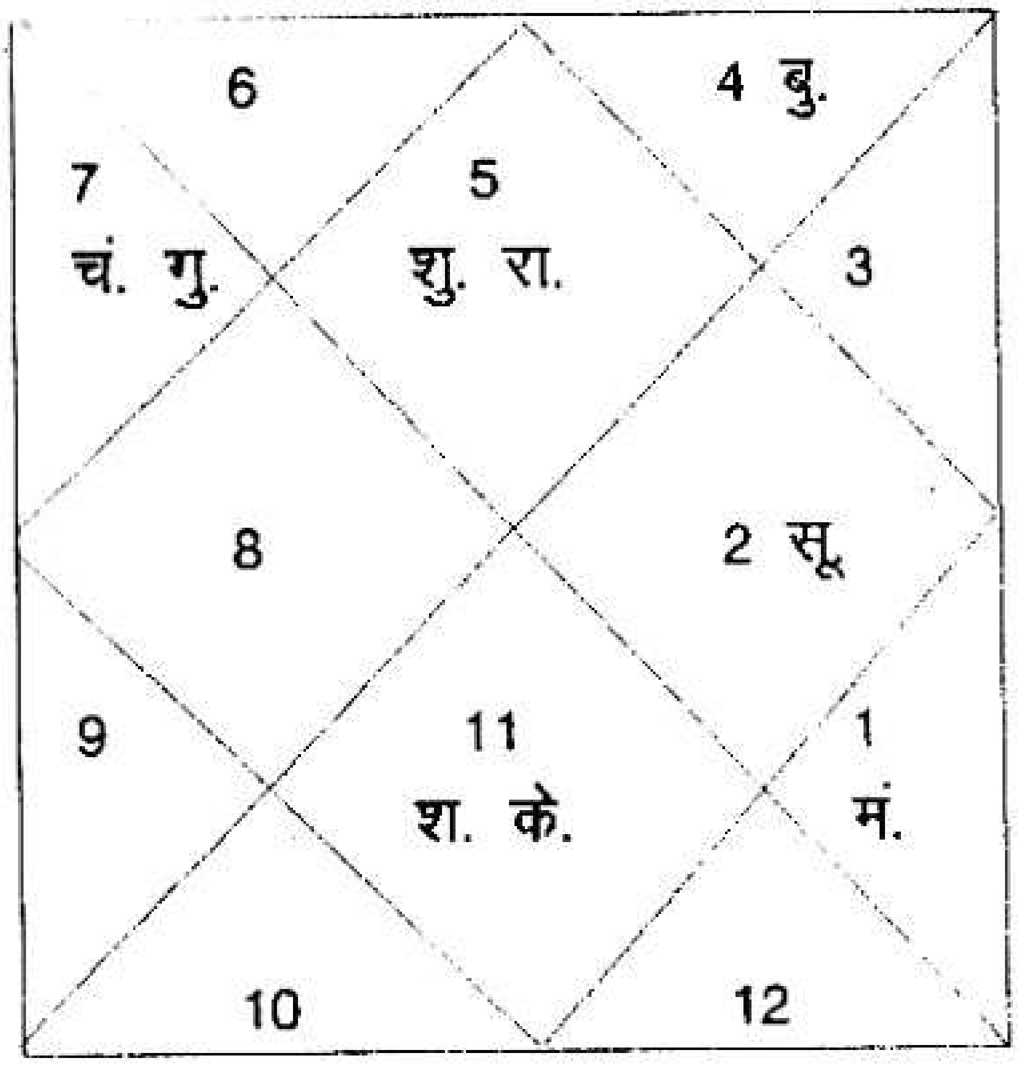

षोडशांश कुण्डली

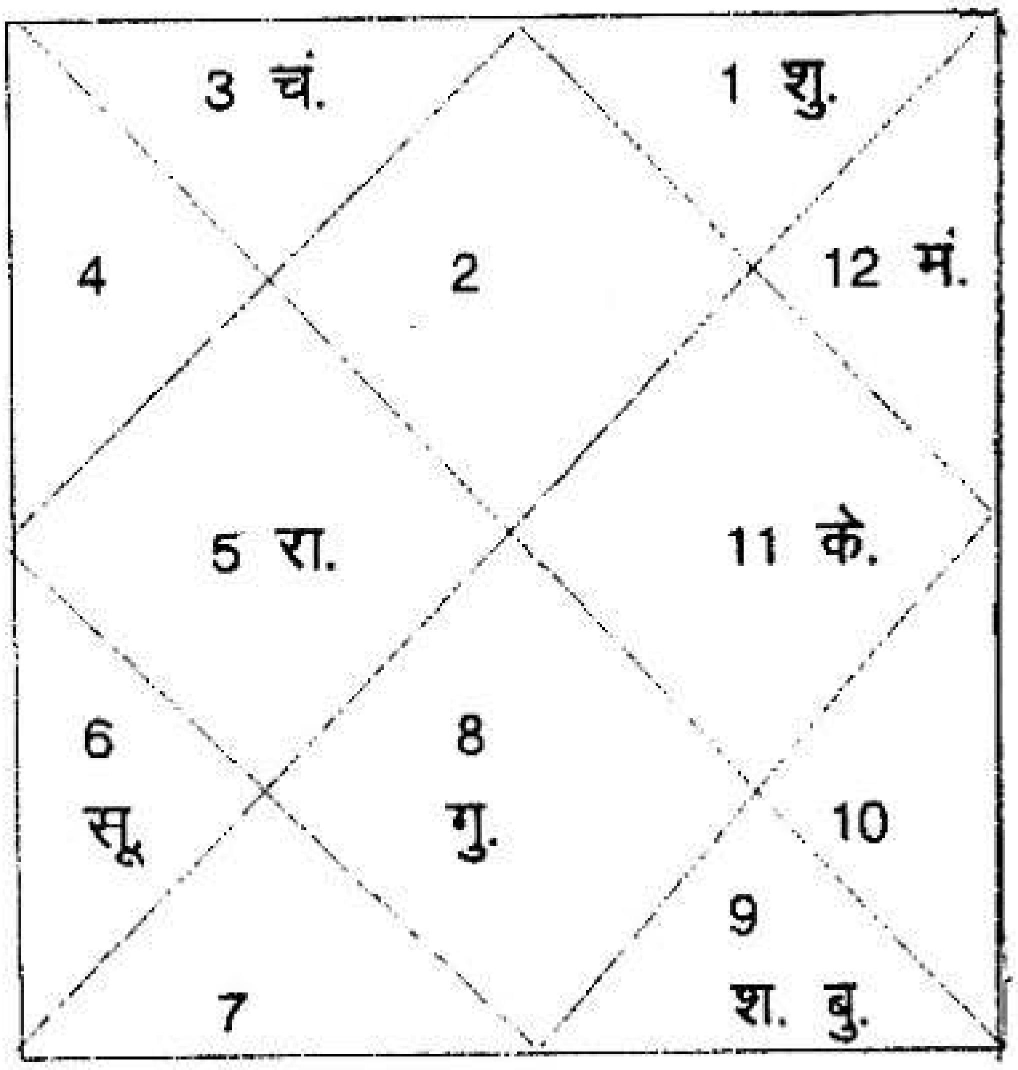

विंशांश कथन–

अथ विंशतिभागानामधिपा ब्रह्मणोदिताः ।

क्रियाच्चरे स्थिरे चापान् मृगेन्द्राद् द्विस्वभावके ।। 16 ।।

कालीगौरी जयालक्ष्मीर्विजया विमला सती ।

तारा ज्वालामुखी श्वेता ललिता बगलामुखी ।। 17 ।।

प्रत्यंगिरा शची रौद्री भवानी वरदा जया ।

त्रिपुरा सुमुखी चेति विषमे परिचिन्तयेत् ।। 18 ।।

समराशौ दयामेधा छिन्नशीर्षा पिशाचिनी ।

धूमावती च मातंगी बाला भद्रारुणा नला ।। 19 ।।

पिंगला छुच्छुका घोरा वाराही वैष्णवी सिता ।

भुवनेशी भैरवी च मंगला ह्यपराजिता ।। 20 ।।

विशांश के अधिपति जैसे पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने कहे हैं, वे कहता हूँ। चर राशियों में मेष से, स्थिर में धनु से व द्विस्वभाव में सिंह से गणना करने पर विंशांश ज्ञात होते हैं। $1^\circ.30'$ अंश के बराबर एक विंशांश होता है।

विषम राशियों में, काली, गौरी, जया, लक्ष्मी, विजया, विमला, सती, तारा, ज्वालामुखी, श्वेता, ललिता, बगलामुखी, प्रत्यंगिरा, शची, रुद्राणी, भवानी, वरदा, जया, त्रिपुरा व सुमुखी ये अधिष्ठात्री देवियां हैं।

सम राशियों में दया, मेघा, छिन्नशीर्षा, पिशाचिनी, धूमावती, मातंगी, बाला, भद्रा, अरुणा अनला, पिंगला, छुच्छुका, घोरा, वाराही, वैष्णवी, सिता, भुवनेश्वरी, भैरवी, मंगला, व अपराजिता हैं।

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ सम व चर राशि में है। अतः दूसरा विंशांश वृष राशि का तथा देवी मेधा सिद्ध होती है।

।। विंशांश चक्र।।

विषम राशि					सम राशि			
अंश	चर मे. तु.	स्थिर सि. कु.	द्विस्वभाव मि. ध.	स्वामी	स्वामी	चर क. म.	स्थिर वृ. वृश्चि.	द्विस्वभाव क. मी.
1.30	1	9	5	काली	दया	1	9	5
3.0	2	10	6	गौरी	मेधा	2	10	6
4.30	3	11	7	जया	छिन्नशीर्षा	3	11	7
6.0	4	12	8	लक्ष्मी	पिशाची	4	12	8
7.30	5	1	9	विजया	धूमावती	5	1	9
9.0	6	2	10	विमला	मातंगी	6	2	10
10.30	7	3	11	सती	बाला	7	3	11
12.0	8	4	12	तारा	भद्रा	8	4	12
13.30	9	5	1	ज्वालामुखी	अरुणा	9	5	1
15.0	10	6	2	श्वेता	अबला	10	6	2
16.30	11	7	3	ललिता	पिंगला	11	7	3
18.00	12	8	4	बगला	छुच्छुका	12	8	4
19.30	1	9	5	प्रत्यंगिरा	घोरा	1	9	5
21.0	2	10	6	शची	वाराही	2	10	6
22.30	3	11	7	रुद्राणी	वैष्णवी	3	11	7
24.0	4	12	8	भवानी	सिता	4	12	8
25.30	5	1	9	वरदा	भुवनेशी	5	1	9
27.00	6	2	10	जया	भैरवी	6	2	10
28.30	7	3	11	त्रिपुरा	मंगला	7	3	11
30.00	8	4	12	सुमुखी	अपराजिता	8	4	12

चतुर्विंशांश विचार :-

सिंहाशकानामधिपाः सिंहादोजभगे ग्रहे ।

कर्काद्युग्मभगे खेटे स्कन्दः पर्शुधरोऽनलः । । 21 । ।

विश्वकर्मा भगो मित्रो मयोऽन्तकवृषध्वजाः ।

गोविन्दो मदनो भीमः सिंहादौ विषमे क्रमात् । ।

कर्कादौ समभे भीमाद् विलोमत् परिचिन्तयेत् । । 22 । ।

विषमराशियों में सिंहादि क्रम से तथा सम राशियों में कर्कादि क्रम से चतुर्विंशांश गिने जाते हैं । एक चतुर्विंशांश का मान 30÷24 = 1°.15′ है । विषम राशियों में, स्कन्द, पर्शुधर (परशुधर), अग्नि, विश्वकर्मा, भग, मित्र, मय, अन्तक, वृषध्वज, गोविन्द, मदन, भीम तथा पुनः स्कन्द, परशुधर आदि क्रमशः दूसरी आवृत्ति करने पर अधिदेव हैं । सम राशियों में विपरीत क्रम से भीम, मदन, गोविन्द आदि अधिदेव होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ सम राशि में तीसरा भाग पड़ता है । अतः कर्क से गिनने पर कन्या चतुर्विंशांश तथा अधिदेव गोविन्द होगा ।

सप्तविंशांश विचार –

भांशाधिपाःक्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहाः ।

चन्द्रेशादिति जीवाहि पितरो भगसंज्ञिताः । । 23 । ।

अर्यमार्कत्वष्ट्रमरुच्छकाग्निमित्रवासवाः ।

निऋत्युदकविश्वेऽजगोविन्दवसवोऽम्बुपः । ।24 । ।

ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चैव प्रकीर्तिताः ।

नक्षत्रेशास्तु भांशेशा मेषादि चरभक्रमात् । । 25 । ।

भांश अर्थात् सप्तविंशांश एक राशि में 27 होते हैं । इनकी गणना सभी चर राशियों से अर्थात् मेष में मेष से, वृष में कर्क से, मिथुन में तुला से व कर्क में मकर से होती है । पुनः सिंह व धनु में भी 1.4.7.10 राशियों से गणना होती है । 1°.6′.40″ के तुल्य एक सप्तविंशांश होता है ।

नक्षत्रों के स्वामी ही भांशेश भी होते हैं । अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, पितामह, चन्द्रमा, ईश, अदिति, गुरु, सर्प, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, वायु (मरुत) इन्द्राग्नी, मित्र, इन्द्र, राक्षस, जल, विश्वेदेव, विष्णु, वसु, वरुण, अजैकपाद, अहिर्बध्न्य, पूषा ये इनके स्वामी हैं ।

।। चतुर्विंशांश चक्रम् ।।

विषम राशि	विषम स्वामी	सम स्वामी	सम राशि	अंश
1.3.5.7.9.11	←	→	2.4.6.8.10.12	
5	स्कन्द	भीम	4	1.15
6	परशुधर	मदन	5	2.30
7	अनल	गोविन्द	6	3.45
8	विश्वकर्मा	वृषध्वज	7	5.00
9	भग	अन्तक	8	6.15
10	मित्र	भय	9	7.30
11	भय	मित्र	10	8.45
12	अन्तक	भग	11	10.00
1	वृषध्वज	विश्वकर्मा	12	11.15
2	गोविन्द	अनल	1	12.30
3	मदन	परशुधर	2	13.45
4	भीम	स्कन्ध	3	15.00
5	स्कन्ध	भीम	4	16.15
6	परशुधर	मदन	5	17.30
7	अनल	गोविन्द	6	18.45
8	विश्वकर्मा	वृषध्वज	7	20.00
9	भग	अन्तक	8	21.15
10	मित्र	भय	9	22.30
11	भय	मित्र	10	23.45
12	अन्तक	भग	11	25.00
1	वृषध्वज	विश्वकर्मा	12	26.15
2	गोविन्द	अनल	1	27.30
3	मदन	परशुधर	2	28.45
4	भीम	स्कन्ध	3	30.00

।। भांश चक्रम् ।।

स्वामी	अंश	मेष सिहं धनु	वृष कन्या मकर	मिथुन तुला कुम्भ	कर्क वृश्चिक मीन
अश्विनी कुमार	1.6.40	1	4	7	10
यम	2.13.20	2	5	8	11
अग्नि	3.20.00	3	6	9	12
ब्रह्म	4.26.40	4	7	10	1
चन्द्र	5.33.20	5	8	11	2
ईश	6.40.00	6	9	12	3
अदिति	7.46.40	7	10	1	4
गुरू	8.53.20	8	11	2	5
सूर्य	10.00.00	9	12	3	6
पित्तर	11.6.40	10	1	4	7
भग	12.13.20	11	2	5	8
अर्यमा	13.20.00	12	3	6	9
सूर्य	14.26.40	1	4	7	10
त्वष्टा	15.33.20	2	5	8	11
वायु	16.40.00	3	6	9	12
इन्द्राग्नी	17.46.00	4	7	10	1
मित्र	18.53.20	5	8	11	2
इन्द्र	20.00.00	6	9	12	3
राक्षस	21.6.40	7	10	1	4
जल	22.23.20	8	11	2	5
विश्वदेव	23.20.00	9	12	3	6
विष्णु	24.26.40	10	1	4	7
वसु	25.33.20	11	2	5	8
वरूण	26.40.00	12	3	6	9
अजैकपाद	27.40.00	1	4	7	10
अहिर्बुधक	28.53.20	2	5	8	11
पूषा	30.00.00	3	6	9	12

। । विशांश कुण्डली । ।

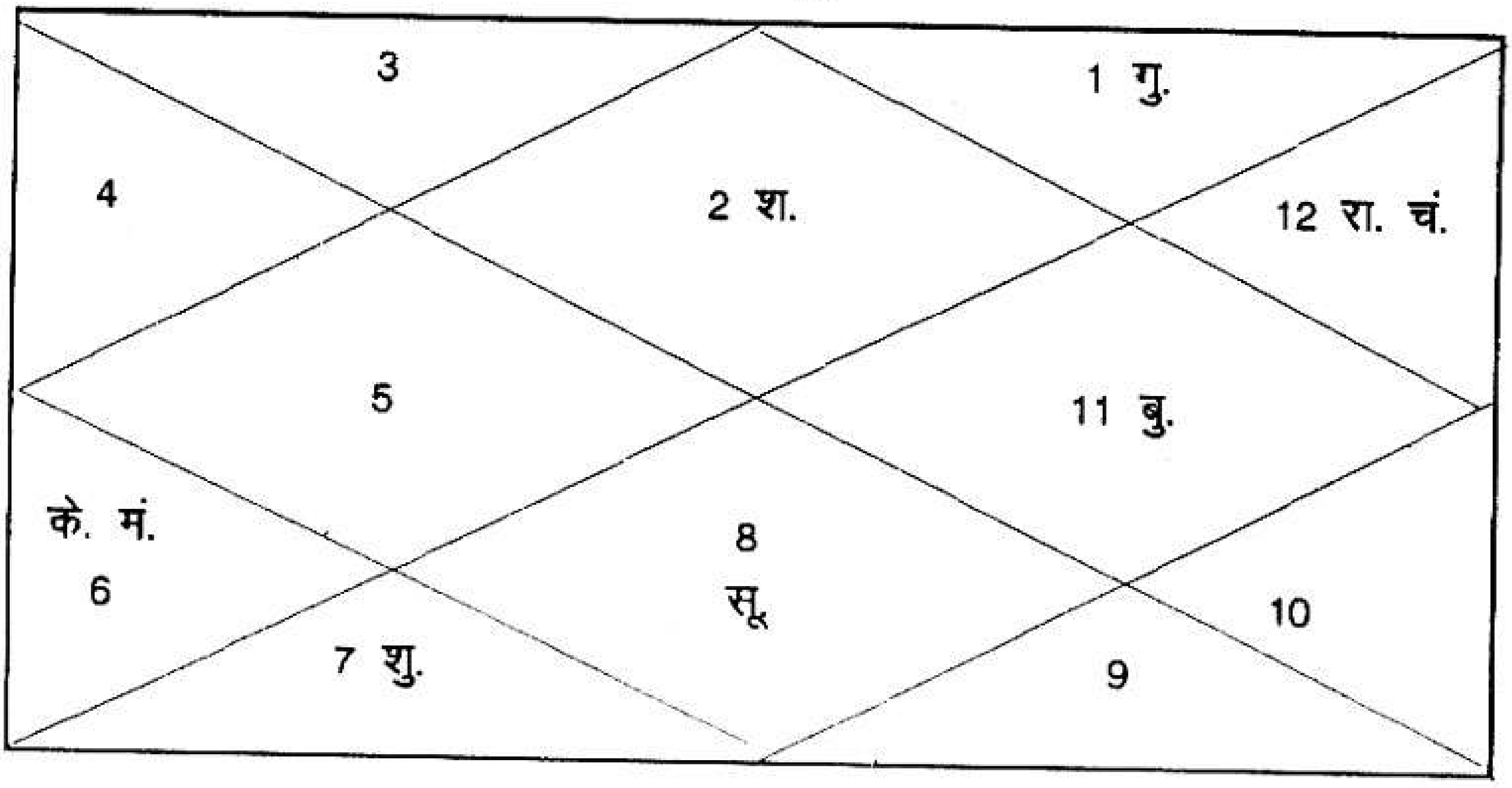

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ तीसरे कृत्तिका भांश में पड़ता है । अतः मीन राशि व अग्नि देवता सिद्ध हुआ ।

। । चतुर्विंशांश कुण्डली । ।

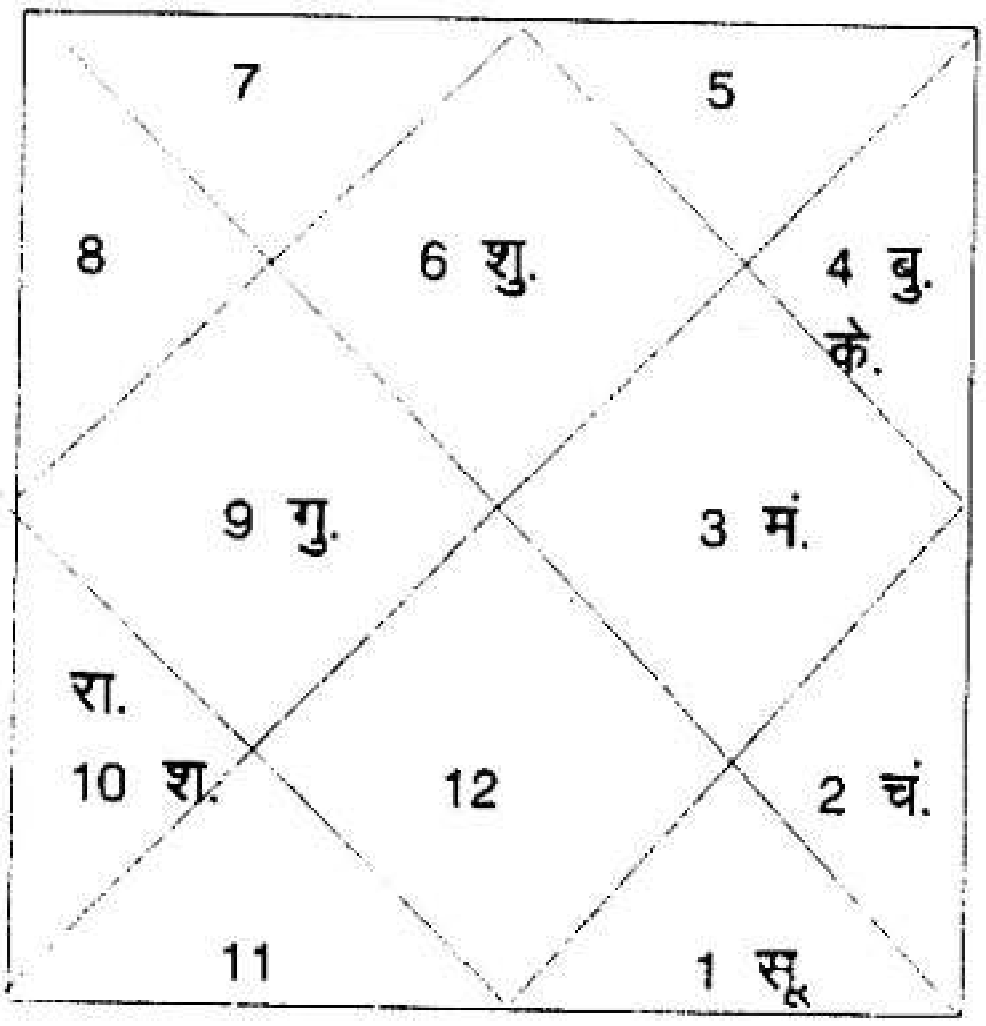

। । भांश कुण्डली । ।

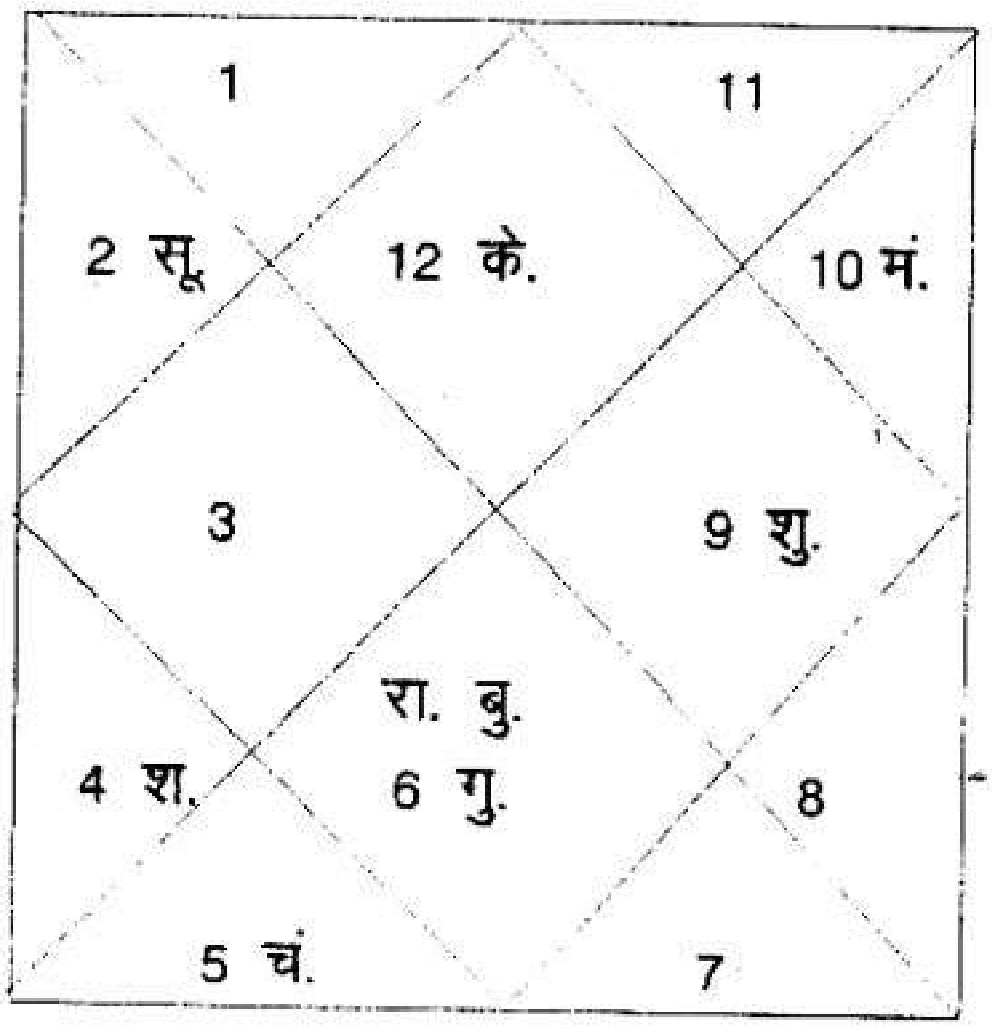

त्रिशांश विचार –

त्रिशांशेशाश्च विषमे कुजार्कीज्यज्ञभार्गवाः ।
पंचपंचाष्टसप्ताक्षभागा व्यत्ययतः समे । । 26 । ।
वह्निसमीरशक्रौ च धनदो जलदस्तथा ।
विषमेषु क्रमाज्ज्ञेयाः समराशौ विपर्ययात् । । 27 । ।

सभी विषम राशियों में 5.5.8.7.5 अंशों में क्रमशः मंगल, शनि, गुरु, बुध, शुक्र के त्रिंशांश होते हैं। सम राशियों में 5.7.8.5.5 अंशों में क्रमशः शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगल के त्रिंशांश होते हैं। विषम में इन ग्रहों की विषम राशि व सम में सम राशि ली जाती है।

अग्नि, वायु, इन्द्र, कुबेर, या मेघ, विषम राशियों में तथा मेघ, कुबेर, इन्द्र, वायु, अग्नि ये सम राशियों में अधिपति या अधिदेव होते हैं।

।।त्रिंशांश चक्र।।

अंश	विषम राशि .1.3.5.7.9.11	स्वामी	स्वामी	समराशि 2.4.6.8.10.12	अंश
0-5°	1	अग्नि	मेघ	2	0-5°
6°-10°	11	वायु	कुबेर	6	6°-12°
11°-18°	9	इन्द्र	इन्द्र	12	13°-20°
19°-25°	3	कुबेर	वायु	10	21°-25°
26°–30°	7	मेघ	अग्नि	8	26°-30′

हमारे उदाहरण में लग्नस्पष्ट 3.2°.48′ सम राशि के पहले त्रिंशांश में है। अतः वृष-राशि का त्रिंशांश हुआ, जिसके अधिदेव मेघ हैं।

यहाँ पर त्रिंशांश अर्थात् तीसवाँ अंश, यह नाम युक्तिसंगत नहीं लगता है। अंश भेद से पाँच ही भाग हुए हैं। इसीलिए सर्वत्र नामतुल्य विभाग करते हुए भी यहाँ पर यह विषम परिपाटी क्यों अपनाई, यह स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों ने त्रिंशांश विभाजन की यह प्रणाली यवनों द्वारा प्रवर्तित मानी है तथा इसे पंचमांश नाम दिया है। (देखें, फलित विकास)। होरा, द्रेष्काण, त्रिंशांश में भेद है, शेष आर्ष प्रणालीवत् ही हैं।

खवेदांश विचार –

चत्वारिंशद् विभागानामधिपा विषमे क्रियात् ।
समभे तुलतो ज्ञेयाः स्वस्वाधिपसमन्विताः ।। 28 ।।
विष्णुश्चन्द्रो मरीचिश्च त्वष्टा धाता शिवो रविः ।
यमो यक्षश्च गन्धर्वः कालो वरुण एव च ।। 29 ।।

राशि का 40 वाँ अंश अर्थात् $30^\circ \div 40 = 0.45'$ का एक चत्वारिंशांश या खवेदांश होता है । विषम राशियों में मेष से व सम राशियो में तुला से गणना करनी चाहिए ।

विष्णु, चन्द्र, मरीचि, त्वष्टा, धाता, शिव, रवि, यम, यक्ष, गन्धर्व, काल व वरुण ये बारी–बारी से अधिपति होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट $3.2^0.48'$ है । $0^0.45'$ का एक भाग मानने से चौथा खवेदांश उदित है । सम राशि होने से तुला से गिना तो मकर राशि का खवेदांश तथा त्वष्टा अधिपति हुआ ।

।। त्रिशांश कुण्डली ।।

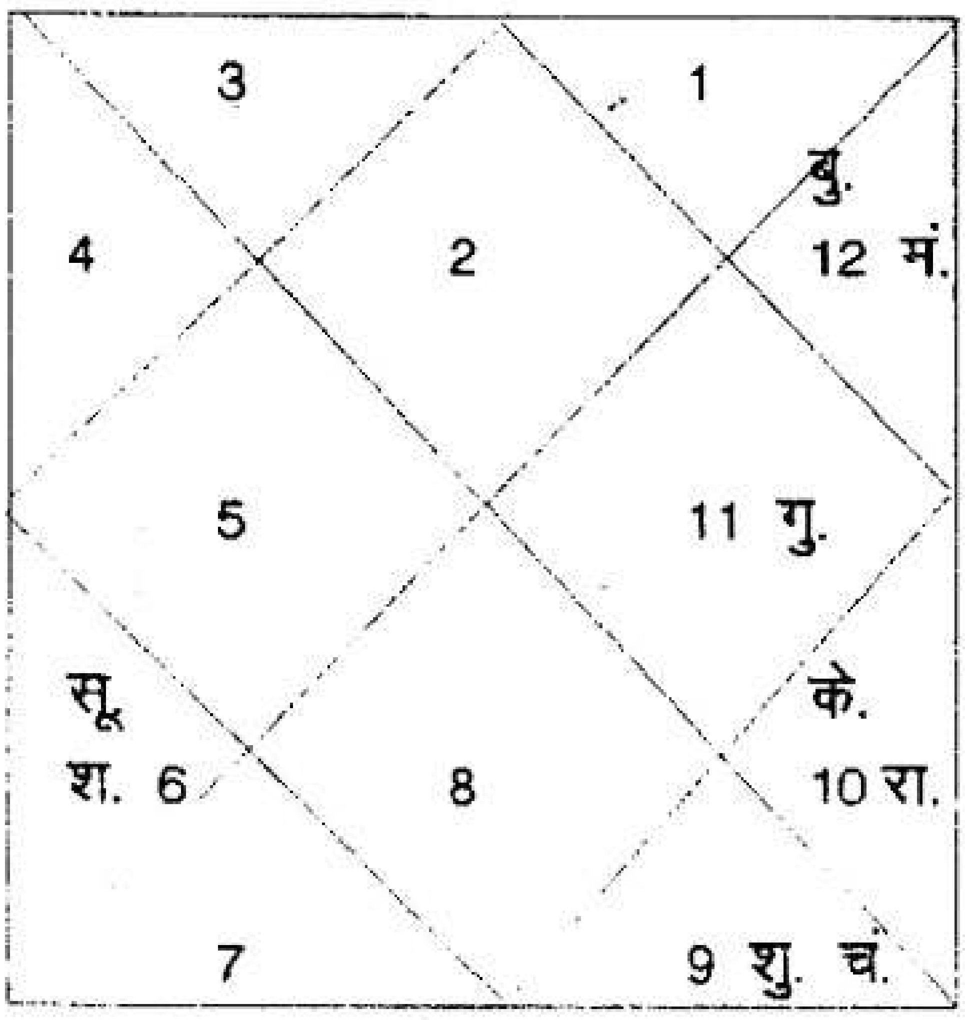

।। खवेदांश कुण्डली ।।

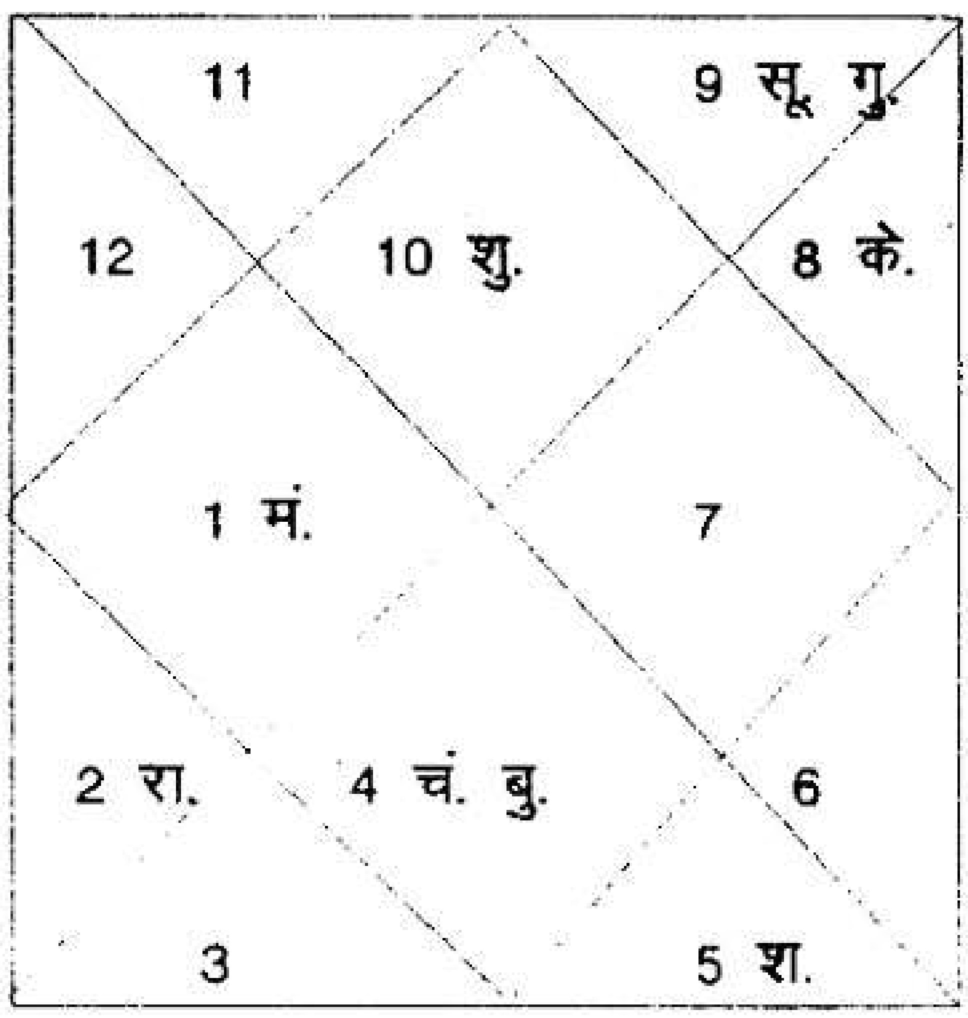

अक्षवेदांश विचार :–

तथाक्षवेदभागानामधिपाश्चरभेक्रियात् ।
स्थिरे सिंहाद् द्विभे चापात् विधीशविष्णवश्चरे ।। 30 ।।

।। खवेदाशं सारिणी ।।

स्वामी	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	अंशदि
विष्णु	1	7	1	7	1	7	1	7	1	7	1	7	0.45
चन्द्र मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	1.30 2.15
त्वष्टा धाता	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	3.00 3.45
शिव रवि	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	4.30 5.15
यम यक्ष	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	6.00 6.45
गन्धर्व काल	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	7.30 8.15
वरुण विष्णु	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	9.00 9.45
चन्द्र मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	10.30 11.15
त्वष्टा धाता	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	12.00 12.45
शिव रवि	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	13.30 14.15
यम यक्ष	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	15.00 15.45
गन्धर्व काल	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	16.30 17.15
वरुण विष्णु	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	18.00 18.45
त्वष्टा मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	19.30 20.15
शिव रवि	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	21.00 21.45
यम यक्ष	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	22.30 23.15
गन्धर्व काल	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	24.00 24.45
वरुण विष्णु	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	10 11	4 5	25.30 26.15
चन्द्र मरीचि	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	12 1	6 7	27.00 27.45
चन्द्र मरीचि	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	2 3	8 9	28.30 29.15
त्वष्टा	4	10	4	10	4	10	4	10	4	10	4	10	30.00

ईशाच्युतसुरज्येष्ठा विष्णुकेशाः स्थिरे द्विभे ।
देवाः पंचदशावृत्या विज्ञेया सुरसत्तम ।। 31 ।।

सभी राशियों में राशि का 45वाँ भाग अक्षवेदांश कहलाता है । 30 अंश ÷ 45 = 0.40′ अंशादि एक चत्वारिंशांश सिद्ध होता है । सभी चर राशियों में मेष से, स्थिर राशियों में सिंह से तथा द्विस्वभाव राशियों में धनु से गणना करनी चाहिए ।

इनमें ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इस क्रम से चर राशियों में, शिव, विष्णु, ब्रह्मा इस क्रम से स्थिर में एवं द्विस्वभाव में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इत्यादि क्रम से 15-15 आवृत्ति करने से अधिदेव होते हैं ।

हमारे उदाहरण में लग्न स्पष्ट 3.2°.48′ पाँचवें अक्षवेदांश में पड़ा । वहाँ पर चर राशियों में मेषादि गणना वशात् सिंह का भाग निश्चित हुआ । ब्रह्मा, शिव, विष्णु इस क्रम से शिव अधिदेव हुए ।

षष्ट्यंश विचार :–

राशीन् विहाय खेटस्य द्विघ्नमंशाद्यमर्कहृत् ।
शेषं सैकं च तद्राशेर्भपाः षष्ट्यंशपाः स्मृताः ।। 32 ।।
घोरश्चराक्षसो देवः कुबेरो यक्षकिन्नरौ ।
भ्रष्टः कुलघ्नो गरलो वह्निर्माया पुरीषकः ।। 33 ।।
अपाम्पतिर्मरुत्वांश्च कालः सर्पामृतेन्दुकाः ।
मृदुः कोमलहेरम्बब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।। 34 ।।
देवादौ कलिनाशश्च क्षितीशकमलाकरौ ।
गुलिको मृत्युकालश्च दावाग्निर्घोरसंज्ञकः ।। 35 ।।
यमश्चकण्टकसुधाऽमृतौ पूर्णनिशाकरः ।
विषदग्धकुलान्तश्च मुख्यो वंशक्षयस्तथा ।। 36 ।।
उत्पातकालसौम्याख्याः कोमलः शीतलाभिधः ।
करालदंष्ट्रचन्द्रास्यौ प्रवीणः कालपावकः ।। 37 ।।
दण्डभृन् निर्मलः सौम्यः क्रूरोऽतिशीतलोऽमृतः ।
पयोधिभ्रमणाख्यौ च चन्द्ररेखा त्वयुग्मपाः ।। 38 ।।
समभेव्यत्ययाज्ज्ञेयाः षष्ट्यंशेशाः प्रकीर्तिताः ।
षष्ट्यंशस्वामिनस्त्वोजे तदीशात्व्यत्ययः समे ।। 39 ।।

शुभषष्ट्यंशसंयुक्ता ग्रहा शुभफलप्रदाः ।
क्रूरषष्ट्यंशसंयुक्ता नाशयन्ति खचारिणः ।। 40 ।।

जिस ग्रह या लग्न का षष्ट्यंश देखना हो, उसके स्पष्ट राश्यादि में से अंश, कला, विकलाओं (राशि छोड़ दें) को 2 से गुणा करें। उन अंशों को 12 से भाग देकर जो शेष बचे, ग्रह की अधिष्ठित राशि से उतने ही षष्ट्यंश बीत चुके हैं। पूर्व शेष में एक जोड़ने से वर्तमान षष्ट्यंश मिल जाता है।

एक राशि में 60 षष्ट्यंश होने से राशि का साठवाँ हिस्सा (30′) एक षष्ट्यंश का मान है। सब राशियों में उसी राशि से गणना होती है। विषम राशियों में घोर, राक्षस आदि क्रम से तथा सम राशियों में विपरीत क्रम अर्थात् चन्द्ररेखा, भ्रमण आदि क्रम से अधिपति होते हैं। जो ग्रह शुभ षष्ट्यंश (शुभ नाम वाले) में पड़ें, वे शुभ तथा अशुभ षष्ट्यंश (भयंकर अशुभ नाम वाले) में पड़ें तो उनका फल नष्ट हो जाता है।

यहीं पर महर्षि ने इन स्वामियों के प्रयोजन का निरूपण कर दिया है। ये सभी स्वामी नामतुल्य फल देने वाले होते हैं। अधिदेवता की जैसी प्रकृति, गुण, शील, स्वभाव हो, वैसा ही मनुष्य का भी होगा। यह लग्नगत वर्ग से देखा जाएगा। शेष ग्रह जैसे भागों में पड़ें, तदनुसार ही उस ग्रह का फल समझना चाहिए। उस ग्रह से संकेतित भाव का भी फल तदनुसार समझना चाहिए। संकेतित देवतादि की उपासना से शान्ति होगी। उसकी दशा में शुभ रहने पर लाभ, अशुभ रहने पर हानि होगी। इस प्रकार भावानुसार देखना चाहिए।

हमारे उदाहरण में $3.2^0.48'$ लग्न स्पष्ट है। $2^0.48'$ अंशादि को 2 से गुणा किया तो $4^0.96'$ मिला। $96'$ को अंश बनाया तो $5^0.36'$ मिला। पाँचवाँ षष्ट्यंश गत व छठा वर्तमान है। कर्क से गिनने पर धनु वर्तमान षष्ट्यंश मिला। स्वामी 'क्रूर' है। यदि $2^0.48'$ की कला $168' \div 30'$ करें तो 5 लब्धि रहने से पाँचवाँ षष्ट्यंश गत व षष्ठ वर्तमान मिला।

। ।अक्षवेदांश सारिणी । ।

।। अक्षवेदांश सारिणी ।।

चर	स्थिर	द्विस्वभाव	अंश	चर	स्थिर	द्विस्वभाव	अंश
1.4.7.10	2.5.8.11	3.6.9.12					
1	5	9	0.40	12 1	4 5	8 9	16.0 16.40
2 3	6 7	10 11	1.20 2.0	2 3	6 7	10 11	17.20 18.0
4 5	8 9	12 1	2.40 3.20	4 5	8 9	12 1	18.40 19.20
6 7	10 11	2 3	4.0 4.40	6 7	10 11	2 3	20.0 20.40
8 9	12 1	4 5	5.20 6.0	8 9	12 1	4 5	21.20 22.0
10 11	2 3	6 7	6.40 7.20	10 11	2 3	6 7	22.40 23.20
12 1	4 5	8 9	8.0 8.40	12 1	4 5	8 9	24.0 24.40
2 3	6 7	10 11	9.20 10.0	2 3	6 7	10 11	25.20 26.0
4 5	8 9	12 1	10.40 11.20	4 5	8 9	12 1	26.40 27.20
6 7	10 11	2 3	12.0 12.40	6 7	10 11	2 3	28.0 28.40
8 9	12 1	4 5	13.20 14.0	8 9	12 1	4 5	29.20 30.00
ब्रह्मा शिव विष्णु	शिव विष्णु ब्रह्मा	विष्णु ब्रह्मा शिव	14.40 15.20	ब्रह्मा शिव विष्णु	शिव विष्णु ब्रह्मा	विष्णु ब्रह्मा शिव	

। । अक्षवेदांश कुण्डली । । षष्ट्यंश कुण्डली । ।

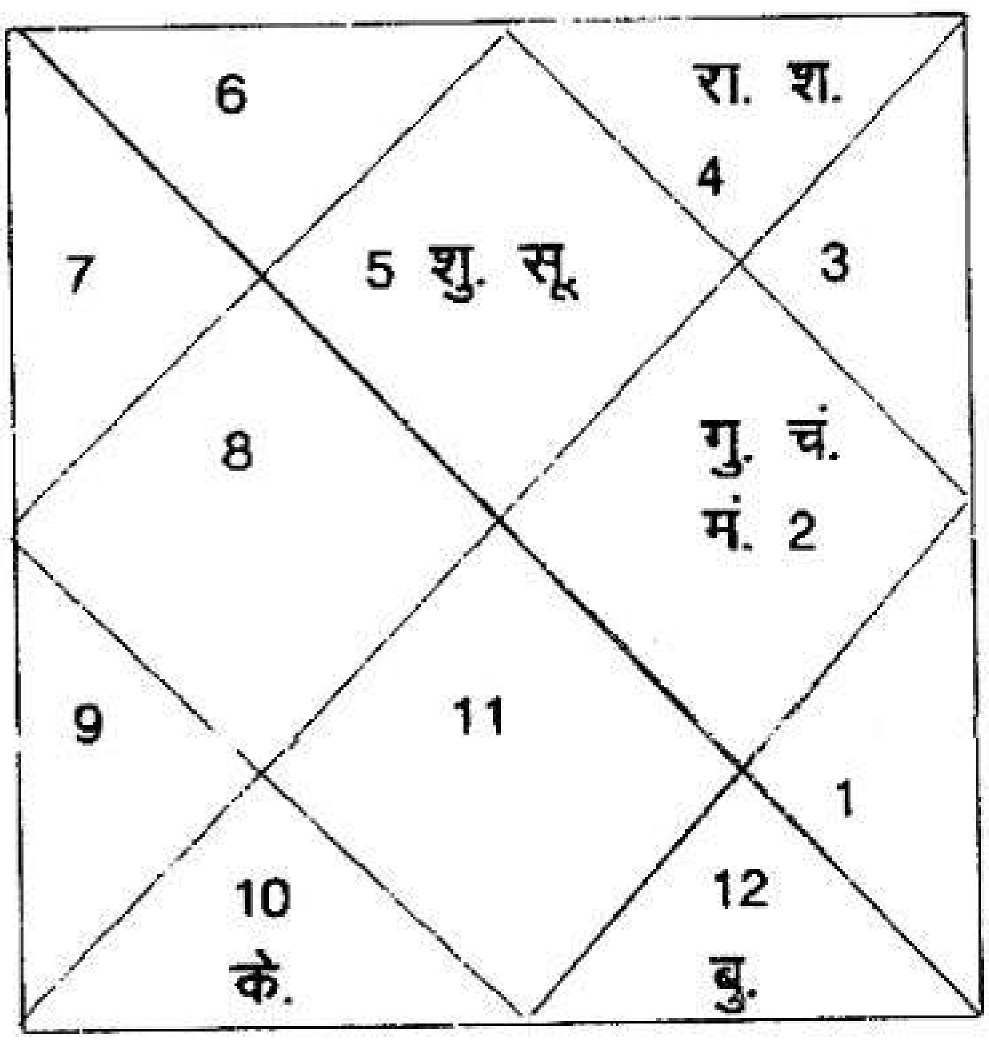

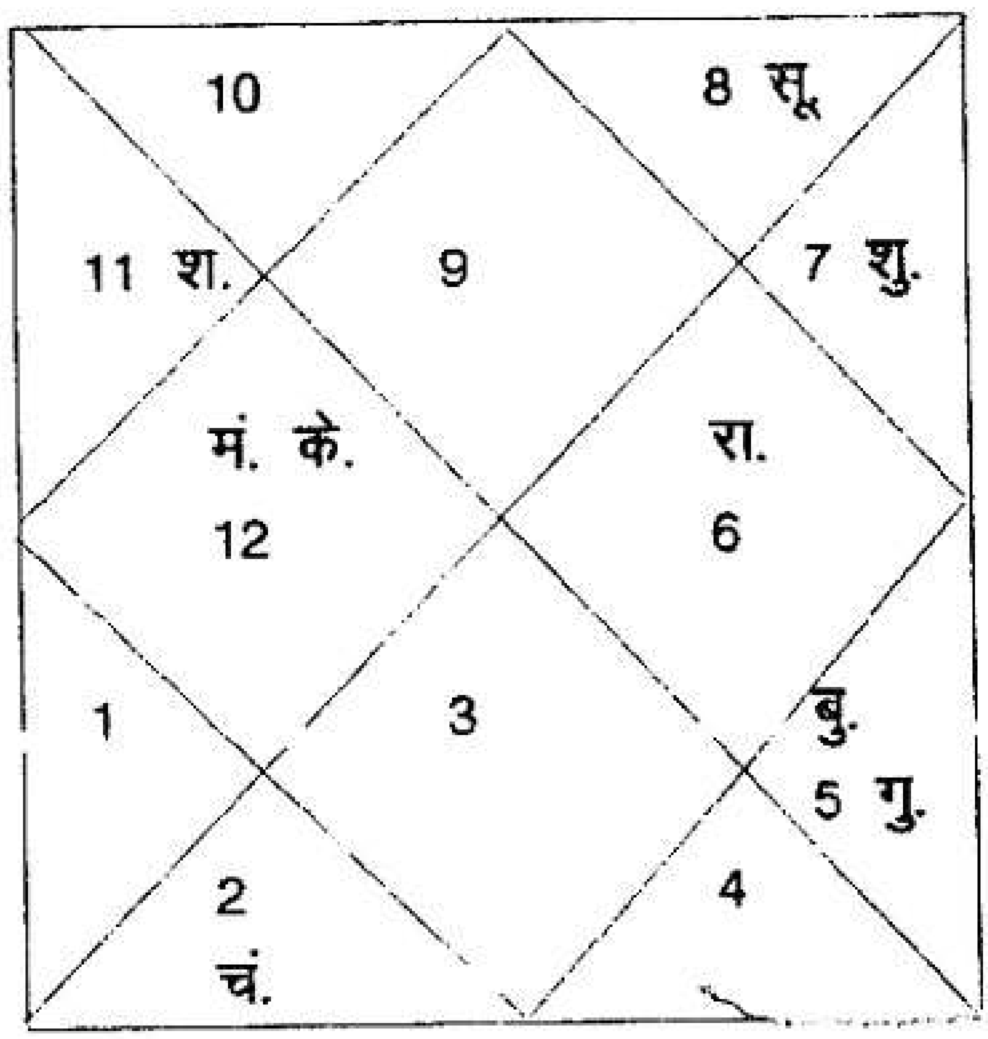

।। षष्ट्यंश बोधक चक्र ।।

विषम-देवतांश	सं.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	के.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश	सम-देवतांश
घोर	1	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	0।30	इन्दुरेखा
राक्षस	2	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	1।0	भ्रमण
देव	3	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	1।30	पयोधि
कुबेर	4	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	2।0	सुधा
यक्ष	5	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	2।30	अतिशीतल
किन्नर	6	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	3।0	क्रूर
भ्रष्ट	7	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	3।30	सौम्य
कुलघ्न	8	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	4।0	निर्मल
गरल	9	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	4।30	दण्डायुध
अग्नि	10	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	5।0	कालाग्नि
माया	11	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	5।30	प्रवीण
प्रेतपुरीष	12	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	6।0	इन्दुमुख
अपांपति	13	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	6।30	दंष्ट्राकराल
देवगणेश	14	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	7।0	शीतल
काल	15	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	7।30	मृदु
अहिभाग	16	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	8।0	सौम्य
अमृत	17	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	8।30	कालरूप
चन्द्र	18	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	9।0	पातक
मृदंश	19	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	9।30	वंशक्षय
कोमल	20	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	10।0	कुलनाश
हेरम्ब	21	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	10।30	विषप्रदग्ध
ब्रह्मा	22	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	11।0	पूर्णचन्द्र
विष्णु	23	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11।30	अमृत
महेश्वर	24	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12।0	सुधा
देव	25	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	12।30	कपटक
आर्द्र	26	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	13।0	यम
कलिनाश	27	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	13।30	घोर
क्षितीश्वर	28	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	14।0	दावाग्नि
कमलाकर	29	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	14।30	काल
मान्दी	30	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	15।0	मृत्यु

।। षष्ट्यंश बोधक चक्र ।।

विषम-देवतांश	सं.	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश	सम देवतांश
मृत्यु	31	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	15।30	मान्दी
काल	32	8		10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	16।0	कमलाकर
दावाग्नि	33	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	16।30	क्षितिश्वर
घोर	34	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	17।0	कलिनाश
यम	35	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	17।30	आर्द्र
कपटक	36	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	18।0	देव
सुधा	37	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	18।30	महेश्वर
अमृत	38	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	19।0	विष्णु
पूर्णचन्द्र	39	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	19।30	ब्रह्मा
विषप्रदग्ध	40	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	20।0	हेराम्ब
कुलनाश	41	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	20।30	कोमल
वंशक्षय	42	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	21।0	मृंद्वश
पातक	43	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	21।30	चन्द्र
कालरूप	44	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	22।0	अमृत
सौम्य	45	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	22।30	अहिभाग
मृदु	46	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	23।0	काल
शीतल	47	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	23।30	देवगणेश
दंष्ट्राकराल	48	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	24।0	अपांपति
इन्दुमुख	49	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	24।30	प्रेतपुरिष
प्रवीण	50	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	25।0	माया।
कालाग्नि	51	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	25।30	अग्नि
दण्डायुध	52	4	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	26।0	गरल
निर्मल	53	5	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	26।30	कुलघ्न
सौम्य	54	6	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	27।0	भ्रष्ट
क्रूर	55	7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	27।30	किन्नर
अतिशीतल	56	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	28।0	यक्ष
सुधा	57	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	28।30	कुबेर
पयोधि	58	10	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	29।0	देव
भ्रमण	59	11	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	29।30	राक्षस
इन्दुरेखा	60	12	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	30।0	घोर

वर्गभेद कथनः–

वर्गभेदानहं वक्ष्ये मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
षड्वर्गाः सप्तवर्गाश्च दिग्वर्गा नृपवर्गकाः ।। 41 ।।
भवन्ति वर्गसंयोगे षड्वर्गे किंशुकादयः ।
द्वाभ्यां किंशुकनामा च त्रिभिर्व्यंजनमुच्यते ।। 42 ।।
चतुर्भिश्चामराख्यं च छत्रं पंचभिरेव च ।
षड्भिः कुण्डलयोगः स्यान्मुकुटाख्यं च सप्तभिः ।। 43 ।।
सप्तवर्गेऽथ दिग्वर्गे पारिजातादि संज्ञकाः ।

हे मैत्रेय ! अब मैं वर्गभेदों को कहता हूँ, तुम उसे समझ लो । सभी वर्गों को चार विभागों में बाँटा जाता है– षड्वर्ग, सप्तवर्ग, दशवर्ग, षोडशवर्ग । षड्वर्ग व सप्तवर्ग में किंशुकादि सज्ञाएँ होती हैं ।

दो स्थानों पर शुभ होने से **'किंशुक'** तीन वर्गों में **'व्यंजन'**, चार वर्गों में **'चामर'**, पाँच वर्गों में **'छत्र'** छह वर्गों में **'कुण्डल'** ये षड्वर्ग की संज्ञाएँ हैं । इसी क्रम से सप्तवर्गों में भी ये ही संज्ञाएँ होती हैं, केवल सप्त स्थानों पर शुभ रहने से 'मुकुट' संज्ञा होती है ।

इसके बाद दशवर्गों की पारिजातादि सज्ञाएँ बता रहा हूँ ।

पारिजातं भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिरुत्तममुच्यते ।। 44 ।।
चतुर्भिर्गोपुराख्यं स्याच्छरैः सिंहासनं तथा ।
पारावतं भवेत्षड्भिर्देवलोकं च सप्तभिः ।। 45 ।।
वसुभिर्ब्रह्मलोकाख्यंनवभिःशक्रवाहनम् ।
दिग्भिः श्रीधामयोगः स्यादथ षोडशवर्गके ।। 46 ।।

दश वर्गों में दो स्थानों पर शुभ होने से **'पारिजात'**, तीन स्थानों पर **'उत्तम'**, चार स्थानों पर **'गोपुर'**, पाँच स्थानों पर **'सिंहासन'** छह स्थानों पर **'पारावत'**, सात स्थानों पर **'देवलोक'**, आठ स्थानों पर **'ब्रह्मलोक'** नौ स्थानों पर **'शुक्रवाहन'** या **'ऐरावत'** दस स्थानों पर **'श्रीधाम'** संज्ञा होती है । इसके बाद षोडश वर्गों में संज्ञाएँ बता रहा हूँ ।

भेदकं च भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिः स्यात्कुसुमाख्यकम् ।
चतुर्भिर्नागपुष्पं स्यात् पंचभिः कन्दुकाह्वयम् ।। 47 ।।
केरलाख्यं भवेत् षड्भिः सप्तभिः कल्पवृक्षकम् ।
अष्टभिश्चनन्दनवनं नवभिः पूर्ण चन्द्रकम् ।। 48 ।।

दिग्भिरुच्चैःश्रवानामरुद्रैर्धन्वन्तरिर्भवेत् ।
सूर्यकान्तं भवेत्सूर्यैर्विश्वैः स्याद् विद्रुमाख्यकम् ।। 49 ।।
शक्रसिंहासनंशक्रैर्गोलोकंतिथिभिर्भवेत् ।
भूपैः श्रीबल्लभाख्यं स्याद्वर्गा भेदैरुदाहृताः ।। 50 ।।

षोड्श वर्गों में संज्ञाएँ इस प्रकार होती हैं। दो स्थानों पर शुभ रहने से **'भेदक'** तीन से **'कुसुम'** चार से **'नागपुष्प'** पाँच से **'कन्दुक'**, छह से **'केरल'**, सात से **'कल्पवृक्ष'**, आठ से **'चन्दनवन'**, नौ से **'पूर्णचन्द्र'** दस से **'उच्चैःश्रवा'**, ग्यारह से **'धन्वन्तरि'**, बारह से **'सूर्यकान्त'**, तेरह से **'विद्रुम**, चौदह से **'इन्द्रासन'** पन्द्रह से **'गोलोक'**, सोलह से **'श्रीवल्लभ'** संज्ञा होती है। इस प्रकार वर्ग भेदों का उल्लेख किया गया है।

शुभ–अशुभ वर्ग विवेक –

स्वोच्चमूलत्रिकोणस्वभवनाधिपतेः शुभाः ।
स्वारूढात् केन्द्रनाथानां वर्गा ग्राह्याः सुधी मता ।।51 ।।
अस्तंगता ग्रहजिता नीचगा दुर्बलाश्च ये ।
शयनादिगतास्तेभ्य उत्पन्ना योगनाशकाः ।। 52 ।।

जो ग्रह वर्ग कुण्डलियों में स्वोच्च, मूल त्रिकोण, स्वराशि में पड़े, वे शुभ होते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रह जिस राशि में हों, उस राशि से 1.4.7.10 भावेशों के वर्ग में आना भी बुद्धिमानों को शुभ ही समझना चाहिए।

इसके विपरीत जो ग्रह जन्म कुण्डली में अस्तंगत, पराजित, शयनावस्थागत, नीचगत, हीनबली हों तो उनके वर्गों को अशुभ समझना चाहिए।

हमारे उदाहरण में सूर्य अपनी होरा, केन्द्रेश के द्रेष्काण उच्च चतुर्थांश, उच्च नवांश केन्द्रेश के द्वादशांश, केन्द्रेश के विंशांश, उच्च चतुर्विंशांश, केन्द्रेश का भांश स्व अक्षवेदांश व केन्द्रेश के (अमृत) षष्ट्यंश में स्थित है। अर्थात् इतने स्थानों पर शुभ है। षोडश वर्गों में 9 स्थानों पर शुभ रहने से 'पूर्णचन्द्र' संज्ञक वर्ग में हुआ। इसी पद्धति से सब ग्रहों का विचार किया जाएगा। प्रचलित परिपाटी में शुभ ग्रहों की राशि में रहने पर भी शुभ मान लिया जाता है, यह बालमति लोगों की प्रक्रिया है। उच्च स्तर पर यह ग्राह्य नहीं है।

।। षोडशवर्ग संज्ञा चक्र ।। (उदाहरण)

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न
ग्रह	10	3	8	10	5	11	8	4
होरा	5	5	4	5	5	4	4	4
द्रेष्काण	2	7	12	2	5	3	8	4
चतुर्थांश	1	6	11	4	5	5	11	4
सप्तमांश	6	5	5	7	6	2	3	10
नवमांश	1	10	8	2	2	11	6	4
दशमांश	9	6	8	2	7	4	6	12
द्वादशांश	2	7	1	4	7	5	11	5
षोडशांश	6	3	12	9	8	1	9	2
विंशांश	8	12	6	11	1	7	2	2
चतुर्विंशांश	1	2	3	4	9	6	10	6
सप्तविंशांश	2	5	10	6	6	9	4	12
त्रिंशांश	6	9	12	12	11	9	6	2
खवेदांश	9	4	1	4	9	10	5	10
अक्षवेदांश	5	2	2	12	2	5	4	5
षष्ट्यंश	8	2	12	5	5	7	11	9
शुभव	9	9	8	6	11	8	7	9

सूर्य, चन्द्र, 'पूर्ण चन्द्रांश' में, लग्न मंगल शुक्र 'चन्द्रन वन' में, गुरु 'धन्वन्तरि' अंश में, शनि, 'कल्पवृक्ष' में व बुध 'केरलांश' में है। ये संज्ञाएँ षोडश वर्ग में देखी गई हैं। इसी पद्धति से षड्वर्ग, सप्तवर्ग, व दशवर्ग में भी देखेंगे।

इसी उदाहरण में क्रूर षष्ट्यंश रहने से सभी शुभ फलों में कमी होगी। अक्षवेदांश में अधिपति शिव भी संहारक, अग्नि समुत्पादक, सेनानी के पिता, गणेश के पिता अतः विरुद्ध गुणों का समन्वय प्रदर्शित करने वाले हैं। खवेदांश में त्वष्टा अर्थात् देवताओं का शिल्पी देवता है। इतने से जातक को क्रूर देवों या शिव की उपासना करनी चाहिए, क्रोध की अधिकता, रचनाधर्मिता, परिवर्तन की कामना, स्थापित मानदण्डों को तोड़ना इत्यादि गुण भी द्योतित होते हैं। त्रिंशांश में देवता 'मेघ' है। त्रिंशांश में अरिष्ट विचार करने से अरिष्ट की अनिश्चितता, कभी लाभ कभी हानि, आकाशवृत्ति, अरिष्ट अर्थात् धूपछाँव का खेल दिखता है। भांश में अग्निदेव, चतुर्विंशांश में विष्णु या गोविन्द देव हैं। भांश में बलाबल विचार अग्निवत् होगा। कभी बहुत बलवान् उत्साही, आक्रामक विघातक, कभी जठराग्निवत् पोषक व धारक स्वभाव व फलादि होगा। चतुर्विंशांश में विद्या की श्रेष्ठता द्योतित होती है। षोडशांश से वाहनों का व सामान्य सुख–दुःख विचार्य है, उसका स्वामी विष्णु स्वयं लक्ष्मीपति है। अतः सुख दिखता है। द्वादशांश में 'अश्विनीकुमार' देवता व विचारणीय विषय मातृ–पितृ–सुख है। यह सुख का द्योतक है। दशमांश में स्वामी 'अनन्त (नाग)' तथा विचार्य विषय महान् कार्य है। अतः अनन्त शेषनाग अथवा स्वयं विष्णु होने से बड़े कार्य सिद्ध होने के योग हैं। नवांश में वर्गोत्तम देव नवांश होने से पत्नी का सुख, सामान्य सुख तथा आन्तरिक बल की दिव्यता प्रतीत होती है। सप्तमांश का स्वामी 'शुद्ध जल' से विचार्य विषय वेश व सन्तान की प्राप्ति दिखती है। चतुर्थांश में भाग्य विचारणीय तथा स्वामी 'सनक' है, अतः प्रसिद्धि दिखती है, सम्पत्ति विशेष नहीं होगी। द्रेष्काण में स्वामी 'नारद' रहने से भ्रातृ–सुख दिखता है, लेकिन स्त्री के कारण (नारद स्त्री के कारण मोहित थे), विशेष समर्पण व कार्यनिष्ठा के कारण या चुगलखोरी के कारण भाई कम सहयोग देंगे।

होरा में पितृ अधिदेव होने से सम्पत्ति आदि के प्रति सांसारिक आकर्षण, संग्रह की प्रवृत्ति आदि दिखती है। मध्यम सम्पत्ति रहने के संकेत हैं। इत्यादि प्रकार से विचार करना चाहिए। पुनश्च लग्न से तत्तत् चीजों के भावेश भी किस प्रकार से स्थित हैं, इससे तारतम्य स्थापित करना चाहिए। यह स्वामि–देवों के आधार पर फल संकेत की विधि है। विशेष फलविचार आगे कहा जा रहा है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां षोडशवर्गाध्यायः सप्तमः ॥ 7 ॥

8

। । अथ वर्गविवेचनाध्यायः । ।

अथ षोडशवर्गेषु विवेकं च वदाम्यहम् ।
लग्ने देहस्य विज्ञानं होरायां सम्पदादिकम् । । 1 । ।
द्रेष्काणे भ्रातृजं सौख्यं तुर्यांशे भाग्यचिन्तनम् ।
पुत्रपौत्रादिकानां वै चिन्तनं सप्तमांशके । । 2 । ।
नवमांशे कलत्राणां दशमांशे महत्फलम् ।
द्वादशांशे तथा पित्रोश्चिन्तनं षोडशांशके । । 3 । ।

पूर्वोक्त षोडश वर्गों में फल विचार का निर्णय बता रहा हूँ। लग्न से शरीर का विचार व होरा कुण्डली से सम्पत्ति आदि का विचार देखना चाहिए ।

द्रेष्काण कुण्डली से भ्रातृवर्ग से उत्पन्न होने वाला सुख अर्थात् भाइयों के सुख का विचार, चतुर्थांश से भाग्य विचार, सप्तमांश से पुत्र–पौत्रादि सन्तति अर्थात् वंशवृद्धि का विचार करना चाहिए ।

नवांश में स्त्री का विचार एवं दशमांश में महत्ता प्राप्त करने से सम्बद्ध राजयोग अथवा जीवन के बड़े–बड़े कामों का विचार करना चाहिए । द्वादशांश में माता–पिता का विचार होता है ।

सुखासुखस्य विज्ञानं वाहनानां तथैव च ।
उपासनाया विज्ञानं साध्यं विंशतिभागके । । 4 । ।
विद्याया वेदबाह्वंशे भांशे चैव बलाबलम् ।
त्रिंशांशकेऽरिष्टफलं खवेदांशे शुभाशुभम् । । 5 । ।
अक्षवेदांशके चैव षष्ट्यंशेऽखिलमीक्षयेत् ।

षोडशांश शब्द श्लोक 3 से लिया जाएगा । षोडशांश में सुख–दुःख का विचार तथा वाहनों के सुख का विचार करना चाहिए । विंशांश में उपासना अर्थात् स्वाध्याय, लगन, तत्परता, काम के प्रति समर्पण अर्थात् ईश्वर के प्रति भक्ति आस्तिकतादि का विचार करना चाहिए ।

चतुर्विंशांश से विद्या का विचार, सप्तविंशांश (भांश) से बलाबल अर्थात् दैवबल, शरीर बल व मनोबल का विचार करना चाहिए ।

त्रिंशांश में अरिष्ट अर्थात् इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति या वियोग का विचार करना चाहिए ।

अक्षवेदांश (पंचचत्वारिंशांश) व षष्ट्यंश से सब फलों का विचार करना चाहिए ।

यत्रकुत्रापि सम्प्राप्तः क्रूरषष्ट्यंशकाधिपः ।।6।।

तत्र नाशो न सन्देहो गर्गादीनां वचो यथा ।

यत्रकुत्रापि सम्प्राप्तः कलांशाधिपतिः शुभः ।। 7 ।।

तत्र वृद्धिश्च पुष्टिश्च गर्गादीनां समीरितम् ।

इति षोडशवर्गाणां भेदास्ते प्रतिपादिताः ।। 8 ।।

क्रूर षष्ट्यंश का स्वामी जिस भाव में पड़े, उस भाव सम्बन्धी बातों का सदैव नाश होता है तथा जहाँ पर शुभ षष्ट्यंशेश (कला = 60, कलांश षष्ट्यंश) पड़े उस भाव की वृद्धि व पुष्टि होती है, ऐसा गर्गादि मुनियों ने कहा है । उसी के अनुसार षोडशवर्गों का फलभेद यहाँ हमने तुम्हें बताया है ।

फलविचार में विशेष :– षड्वर्गों व सप्तवर्गों से विशेषतया फलादेश की परिपाटी प्रचलित है । अवान्तर ग्रन्थों में किसी वर्ग से भिन्न विषय का विचार भी बताया गया है । सामान्यतः वर्ग कुण्डलियों में इन वस्तुओं का भी विचार होता है–

(i) लग्न या ग्रह– शरीर, से सम्बन्धित सभी बातें । सम्पत्ति, धन, धनभोग, धननाश, समस्त भौतिक सुख तथा शरीर–नाश ।

(ii) होरा सम्पत्ति, मतान्तर से शील, चरित्र, सदसत् निर्णय की शक्ति व आचरण तथा विपत्ति ।

(iii) द्रेष्काण– पराक्रम, पदवी, भ्रातृसुख परिश्रम का फल इत्यादि ।

(iv) सप्तमांश– धन सम्पत्ति का संचय, बचत, खर्च की प्रवृत्ति, विनिवेश, धन जमा करना आदि । 'धनस्य निचयं सप्तांशकात् चिन्तयेत्) ।

(v) नवांश– वर्ण, रूप, गुण, बुदि्ध, पुत्र, स्त्री, अथवा समस्त शुभाशुभ फल ।

(vi) द्वादशांश– सन्तति, शरीर, आयु, स्त्री आदि का विचार ।

(vii) त्रिंशांश– अरिष्ट, रोग, कष्ट, दुर्घटना, दया, उदारता, व्यवहारविधि, स्त्री, मृत्यु आदि ।

लग्ने देहाकारो, होरायामर्थसम्पदो विपदः ।

द्रेष्काणे कर्मफलं सप्तांशे बन्धुसौख्यं च ।।

पुत्रं नवांशभावे द्वादशभागे चिन्तयेत् पत्नीम् ।

त्रिंशांशे निधनफलं शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम् ।।

सौख्यं, शीलं, पदं, द्रव्यं, वर्णबुद्धिगुणात्मजान् ।

वपुः स्त्रीफलमित्याहुः षड्वर्गे क्रमशो विधिः ।।

होरा विचार –

(i) प्रचलित मत में सभी पुरुष ग्रह सूर्य होरा में व सभी स्त्री ग्रह चन्द्र होरा में हों तो शुभ हैं । सूर्य की होरा में चन्द्र तथा चन्द्र की होरा में सूर्य हो तथा अधिक ग्रह सूर्य होरा में हों तो धनी होता है ।

(ii) प्राचीन मत से राशि अनुसार मेष वृष, मिथुन इत्यादि की होरा हो सकती थी । उसमें होराकुण्डली में व्यय भाव में ग्रह होना अशुभ तथा धन स्थान में बहुत से ग्रह होना उत्तरोत्तर शुभ अर्थात् धनप्रद होता है ।

बहवो धवगाः श्रेष्ठास्तथा नेष्टा व्यये ग्रहाः ।

द्रेष्काण विचार –

(i) द्रेष्काण में लग्न राशि ही पड़े अथवा, द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र में कोई भी ग्रह उच्च, मूलत्रिकोण या स्वक्षेत्री हो तो बहुत शुभ है । ऐसे व्यक्ति का परिश्रम सफल होता है । कई उच्च ग्रह हों तो प्रशासक, राजादि होता है ।

(ii) द्रेष्काणेश यदि द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र, त्रिकोण में हो, शुभयुक्त दृष्ट हो अथवा शुक्र से विशेषतया दृष्ट हो तो मनुष्य सुखी, यशस्वी होता है ।

(iii) द्रेष्काणेश पणफर में हो, स्वोच्चादिगत हो तो पदवी प्राप्त होती है, प्रतिष्ठा मिलती है । यदि आपोक्लिम में स्वोच्चादिगत हो तो उसका परिवार, सन्तान, भाई आदि बड़े धार्मिक व सदाचारी होते हैं ।

(iv) प्रायः द्रेष्काणेश जिस भाव या राशि में हो, तत्तुल्य भाई–बहन होते हैं । शुभयुक्त हो तो वे जीवित रहते हैं, अन्यथा कुछ नष्ट हो जाते हैं ।

हमारे उदाहरण में सूर्य अपनी होरा में गुरु सहित, बुध, चन्द्र सहित है । चन्द्रमा साथ रहने से विशेष शुभ नहीं है । प्रायः शरीर सुख में कमी, दवा पर पैसे खर्च होंगे । सम्पदा का तात्पर्य सभी सांसारिक उपलब्धियों से है, केवल Property कहना उचित नहीं है । सूर्य होरा में पापग्रह रहने से धनी तथा शुभ ग्रह रहने से कम धनी होता है । यह जातक विशेष धनिक नहीं होगा ।

द्रेष्काण कुण्डली में केन्द्र में तुला में द्रेश्काणेश चन्द्र है । उस पर किसी ग्रह की पूर्ण दृष्टि नहीं है । अतः लगभग सात भाई–बहन होंगे । भाइयों का सुख साधारण रहेगा । केन्द्र त्रिकोण में पाप ग्रहों की अधिकता भाइयों की विशेष सहायता व सौहार्द में कमी प्रकट करती है । वास्तव में भी यह

जातक मध्यमस्तरीय तथा पाँच जीवित भाई–बहनों वाला है। मंगल की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि है। इसकी एक बहन व एक भाई का देहान्त बाल्यकाल में हो गया था।

सप्तमांश विचार–

(i) प्रायः जितने ग्रह सप्तांश राशि को देखें, उतनी ही सन्तान होती है।

(ii) जितने ग्रह स्वोच्चादि में स्थित होंगे, उतनी ही अच्छी स्थिति की सन्तान होगी। जातक स्वयं भी धनी होगा।

(iii) सप्तांश लग्न में विषम राशि, शुभ दृग्योग पुत्रजनक व अन्यथा पुत्रीयोग समझना चाहिए।

(iv) यवन मत में सप्तांश से शरीरादि का विचार भी कहा है। यह सब लग्नवत् समझना चाहिए।

(v) दक्षिण भारतीयों ने द्रेष्काण, सप्तमांश, नवांश व द्वादशांश को विशेषतया फलविचार लग्नवत् विचारणीय कहा है।

उदाहरण में सप्तमांश में यद्यपि सम राशि है परन्तु गुरु की उस पर पूर्ण दृष्टि है। बुध की त्रिपाद दृष्टि है। दोनों त्रिकोणों में शुभ ग्रह हैं। शुक्र केन्द्रेश त्रिकोणेश होकर पंचम में है, यह सन्तति सुख पुत्रादि योग बनाता है। जातक वास्तव में सपुत्र है।

स्वक्षेत्री व सभी शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण में रहने से जातक धनी होगा, लेकिन अष्टम में चन्द्र युक्त मंगल सन्तति की ओर से क्लेश को द्योतित करता है।

नवांश विचार--

(i) लग्न नवांश के समान आकार होता है। चन्द्र नवांश के अनुसार जातक का रंग होता है।

(ii) नवांश में बलवान्, उच्चादिगत ग्रह केन्द्र त्रिकोण में हो तो उत्तम, 2.3.6.11 में हो तो मध्यम तथा 8.12 में सामान्य होते हैं।

(iii) नवांशेश अच्छी राशि में हो तो अच्छी पत्नी, नीचादि में हो तो अधम पत्नी होती है।

(iv) लग्नवत् सब बातों का विचार करना चाहिए। पंचम स्थान पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो अथवा नवांश में पंचमस्थ राशि की संख्या तुल्य या पंचमेश की संख्या तुल्य सन्तति होती है।

(v) नवांशेश केन्द्र में हो 20-22 वर्ष में, त्रिकोण में हो 23-25 वर्ष में तथा 8, 12 भावों में अनिष्ट होकर स्थित हो तो बहुत विलम्ब करके विवाह होता है। स्त्री की कुण्डली हो तो 18-20 तथा 21-24 वर्ष समझें।

नवांशेश 8 भाव में हो तो स्त्री की मृत्यु शीघ्र होती है। सूर्य, राहु, मंगल के साथ नवांशेश हो तो रोग, दाह या विपत्ति से पत्नी की मृत्यु होती है। नवांशेश चन्द्र के साथ हो तो पत्नी प्रायः चंचल स्वभाव वाली होती है। शुक्र के साथ हो तो विशेष कामुक होती है।

विचारणीय उदाहरण में वर्गोत्तम नवांश बहुत शुभ है। नवांशेश केन्द्र में है। केन्द्र में उच्चस्थ सूर्य, त्रिकोण में वर्गोत्तमी स्वक्षेत्री मंगल तथा अष्टम में शुभ ग्रह वर्गोत्तमी शुक्र है। यह धन, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, पत्नी सुख के लिए अच्छा योग है। लाभ में शुभ ग्रह होना भी शुभ है। नवांशेश केन्द्रस्थ होने से साधारण आयु में 20-22 वर्ष में प्रायः विवाह होता है। नवांशेश राहुयुक्त होने से पत्नी की मृत्यु रोग से होती है।

द्वादशांश विचार –

(i) द्वादशांश में सूर्य राशि हो या द्वादशांशेश, जन्म लग्न में स्थित हो तो मनुष्य का स्तर पिता के बराबर होता है।

(ii) द्वादशांशेश द्वादशांश में त्रिक् में गया हो, पाप युक्त दृष्ट हो तो माता–पिता का सुख व सहायता कम होती है।

(iii) द्वादशेश यदि नीच, अस्तंगत या शत्रुक्षेत्री हो तो भाग्यहीनता होती है।

(iv) जन्मलग्नवत् भी विचार करना चाहिए।

उदाहरण में सूर्य का द्वादशांश है। द्वादशांशेश केन्द्र में है। दशमेश व लग्नेश का स्थान परिवर्तन योग है। नवम में नवमेश मंगल है। सप्तम में सप्तमेश है। यह उत्तम धन–सम्पत्ति व भाग्य योग है।

त्रिंशांश विचार –

(i) त्रिंशाशेश शुभयुक्त दृष्ट या अच्छे भाव में हो तो शुभ है।

(ii) त्रिक् में गया हो या नीचास्तंगतादि हो तो बहु वैर होता है।

(iii) 6.8 में पाप ग्रह क्रूर मृत्यु व शुभ ग्रह शुभ स्वाभाविक मृत्यु देते हैं।

(iv) स्त्री कुण्डली में विशेष विचार बृहज्जातक में देखें। बड़ा सटीक बैठता है।

(v) त्रिंशांश में शुभ राशि या शुभ दृग्योग रहने से तथा त्रिंशांशेश शुभ स्थानों में रहें तो प्रायः अनिष्ट, विपत्ति, दुर्घटनादि से रहित जीवन होता है।

उदाहरण में त्रिंशांश में शुभ राशि तथा त्रिंशांशेश शुक्र चन्द्र युक्त है। यह शुभ मृत्यु अर्थात् घर में परिवार जनों के बीच, सम्मानपूर्वक मरण

द्योतित करती है । त्रिंशांशेश अष्टम में होने से राजपक्ष से भय प्रतीत होता है । त्रिंशांश शुक्र होने से व्यक्ति रसिक, शौकीन स्वभाव वाला होगा । शुक्र से ही प्रमेह रोग अर्थात् डायविटीज, प्यास, अधिक खुश्की या ज्वर से मृत्यु प्रतीत होती है ।

महर्षि ने षष्ट्यंश व पंचचत्वारिंशांश से सब कुछ देखने के लिए कहा है । अक्षवेदांश में लग्नेश लग्न में है । गुरु, चन्द्र, मंगल दशम में शुभ हैं । नवमेश दशम में, दशमेश लग्न में लग्नेश के साथ उत्तम योग बनाता है । अष्टम में बुध शुभ व आयुष्यरक्षक है । अतः जातक सुखी स्वस्थ प्रायः (द्वादश में शनि व राहु प्रौढ़ावस्था व वृद्धावस्था में रोगादि कारक हैं) धनी व मान्य होना चाहिए ।

षष्ट्यंश में उसका स्वामी नवम में शुभ युक्त, दशमेश नवम में, चन्द्रमा उच्चस्थ, शुक्र लाभ भाव में स्वक्षेत्री, तृतीयस्थ स्वक्षेत्री शनि, शुभ दृष्ट है । यह भी शुभ योग है । लग्न में क्रूर षष्ट्यंश विशेष शुभ नहीं है । लेकिन पंचम में शनि सौम्यांश में, राहु देवगणांश में तथा मंगल कालांश में है । अतः सन्तान हानि के पश्चात् सन्तान लाभ व सन्तान सुख होगा । दावाग्नि अंशगत शुक्र अष्टम में स्थित है । यह मृत्यु का नाशक होने से शुभ ही है । सप्तम में सूर्य बुध भी अमृत व कमला षष्ट्यंश में होने से योग कारक हैं ।

उक्त बातें वैचारिक सूत्रपात करने हेतु पाठकों की सुविधार्थ कही हैं । वर्ग विवेचन के विषय में कभी विस्तार से विवेचन करेंगे ।

वर्गों में विश्वा बलः–

उदयादिषु भावेषु खेटस्य भवनेषु वा ।
वर्गविंशोपकं वीक्ष्य ज्ञेयं तेषां शुभाशुभम् ।। 9 ।।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वर्गविंशोपकं बलम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण विपाकं दृष्टिगोचरम् ।। 10 ।।

जन्म लग्न, सभी ग्रहों व सभी भावों के स्पष्ट से प्राप्त वर्गो का फल कहना चाहिए, तथा वर्गो में विश्वा (विंशोपक) बल देखकर शुभाशुभ का निर्णय करना चाहिए ।

अब मैं वर्ग विंशोपक बल कहता हूँ, जिसके जानने से समस्त शुभाशुभ फल का ज्ञान होता है ।

विंशोपक अर्थात् बिस्वा प्राचीन चलन का शब्द है । जिस प्रकार 100 वाँ भाग $\frac{1}{100}$ या प्रतिशत 1 % कहलाता है । उसी तरह 20 को सम्पूर्ण इकाई मानकर उसका भाग निर्धारण करना 'विंशोपक या बिस्वा या $\frac{1}{20}$

होता है। वर्ग कुण्डलियों में आगे बताए जा रहे बिस्वा बल से फल की वास्तविक मात्रा निर्धारित करनी चाहिए।

गृहविंशोपके वीक्ष्य सूर्यादीनां खचारिणाम्।

स्वगृहोच्चे बलं पूर्णं शून्यं तत्सप्तमे स्थिते।। 11।।

ग्रहस्थितिवशाज्ज्ञेयं द्विराश्यधिपतिस्तथा।

मध्येऽनुपाततो ज्ञेयं ओजयुग्मर्क्षभेदतः।। 12।।

सभी सूर्यादि ग्रहों का विंशोपक देखकर फल कहें। स्वगृह या स्वोच्च में ग्रह को पूर्ण बल तथा नीच में 0 बल मिलता है। जो ग्रह दो राशियों के अधिपति हों, वे दोनों भावों पर अपना प्रभाव रखेंगे, लेकिन विशेषतया अपनी राशि से मूलत्रिकोण में विशेष फल देंगे।

फल विचार की परिपाटी –

सूर्यहोराफलं दद्युर्जीवार्कवसुधात्मजाः।

चन्द्रास्फुजिदर्कपुत्राश्चन्द्रहोराफलप्रदाः।।13।।

फलद्वयं बुधो दद्यात् समे चन्द्रं तदन्यके।

रवेः फलं स्वहोरादौ फलहीनं विरामके।। 14।।

मध्येऽनुपातात्सर्वत्र द्रेष्काणेऽपि विचिन्तयेत्।

गृहवत् तुर्यभागेऽपि नवांशादावपि स्वयम्।। 15।।

सूर्यः कुजफलं धत्ते भार्गवस्य निशापतिः।

त्रिंशांशके विचिन्त्यैवमत्रापि गृहवत् स्मृतम्।। 16।।

होरा में गुरु, सूर्य, मंगल ये तीनों सूर्य होरा में रहने पर सूर्यवत् फल देते हैं। अर्थात् पुरुष ग्रह होने से सूर्य होरा में स्वहोरास्थ मान लिए जाते हैं। इसी तरह चन्द्र होरा में चन्द्रमा, शुक्र व शनि स्वहोरास्थ हैं। अर्थात् चन्द्र होरा शुक्र व शनि की भी होरा है।

बुध प्रायः दोनों ओर स्वहोरास्थ माना जाता है। सम राशि में चन्द्र होरा में तथा विषम राशि में सूर्य होरा में बुध स्वहोरास्थ होता है।

सूर्य अपनी होरा में प्रारम्भ में विशेष फलद है तथा होरान्त में निष्फल है। चन्द्रमा होरान्त में सफल व होरा के आदि में निष्फल है, यह बात अन्यथा सिद्ध है। यदि बीच में हों तो अनुपात करना चाहिए।

इसी तरह द्रेष्काणादि में भी फल समझना चाहिए। अर्थात् प्रारम्भ में पूर्ण फल मध्य में मध्यम तथा अन्त में फल विराम समझना चाहिए।

चतुर्थांश व नवांश में जन्म कुण्डलीवत् भी विचार करना चाहिए। त्रिंशांश में सूर्य को मंगल के त्रिंशांश में स्वत्रिंशांशगत, चन्द्रमा को शुक्र के

त्रिंशांश में स्वत्रिंशांश गत समझना चाहिए। अथवा सूर्य के त्रिंशांश का फल मंगल की तरह तथा चन्द्र का फल शुक्र की तरह होगा। त्रिंशांश कुण्डली को लग्नवत् विचारणीय भी मानना चाहिए।

विषम राशि वर्ग क्रमशः कम बलवान् होते जाते हैं अर्थात् 0°-15° तक मेष में विषम होरा है। अतः 0°-5° तक पूर्ण, 6°-10° तक मध्य तथा 11°-15° तक अल्प बली होगी। सम होरा में विपरीत समझना चाहिए। अर्थात् प्रथम अंश में $\frac{100}{100}$ फल तथा 15 अंश में ÷ फल तो बीच में कितना? इस तरह अनुपात करना चाहिए। यही विधि सब वर्गों में अपनाई जाएगी।

षड्वर्ग के विंशोपक –

लग्नहोराद्कृाणांकभागसूर्यांशका इति।

त्रिंशांशकश्च षड्वर्गा अत्र विंशोपकाः क्रमात्॥ 17॥

रसनेत्राब्धि पंचाश्विभूमयः सप्तवर्गके।

लग्न, होरा द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश व त्रिंशांश ये षड्वर्ग होते हैं। इनमें 6.2.4.5.2.1 क्रमशः विंशोपक बल होता है। अर्थात् ये वर्ग विंशोपक गुणक हैं।

सप्तवर्ग के विंशोपक –

ससप्तमांशके तत्र विश्वका पंचलोचनम्॥ 18॥

त्रयः सार्धद्वयं सार्धवेदा द्वौरात्रिनायकः।

स्थूलं फलं च संस्थाप्य तत्सूक्ष्मं च ततस्ततः॥ 19॥

इन्हीं षड्वर्गों में सप्तमांश जोड़ देने से 'सप्तवर्ग' बन जाते हैं। इनमें क्रमशः $5.\ 2.\ 3.\ 2\frac{1}{2}, 4\frac{1}{2}\ 2.\ 1$ यह विंशोपक बल है। यह स्थूलतया बताया गया फल है। विशेषतया सूक्ष्म फल विभागार्थ अनुपात करना चाहिए।

उक्त सब संख्याओं का योग 20 होता है। आशय यह है कि षड्वर्गों में समन्वित रूप से राशि या लग्न को $\frac{6}{20}$ या 30% महत्त्व देना, होरा को $\frac{2}{20}$ या 10% महत्त्व, द्रेष्काण को $\frac{4}{20}$ या 20%, नवांश को $\frac{5}{20}$ या 25% महत्त्व, द्वादशांश को $\frac{2}{20}$ या 10% तथा त्रिशांश को $\frac{1}{20}$ या 5% महत्त्व देना होगा। इसी तरह सप्तवर्ग में भी समझना चाहिए।

यदि कोई ग्रह स्वक्षेत्र में (स्वक्षेत्र में उच्च व मूलत्रिकोण भी गृहीत हैं) हो तो उक्त पूर्ण बल, अधिमित्र के वर्ग में $\frac{18}{20}$, मित्र के वर्ग में $\frac{15}{20}$ तथा सम गृह में $\frac{10}{20}$, शत्रु के गृह में $\frac{7}{20}$ एवं अधिशत्रु के गृह में $\frac{5}{20}$के अनुपात से उक्त बल समझना चाहिए ।

दशवर्ग में विंशोपक –

दशवर्गा दिगंशाढ्याः कलांशाः षष्टिभागकाः ।
त्रयं क्षेत्रस्य विज्ञेयाः पंचषष्ट्यंशकस्य च ।। 20 ।।
सार्द्धैकभागाः शेषाणां विश्वकाः परिकीर्तिताः ।
अथ वक्ष्ये विशेषेण बलं विंशोपकाह्वयम् ।। 21 ।।

उक्त सप्तवर्गों में दशमांश, षोडशांश व षष्ट्यंश मिलाने से दस वर्ग होते हैं । इनमें राशि को $\frac{3}{20}$ या 15%, षष्ट्यंश में $\frac{5}{20}$ या 25% तथा शेष आठ वर्गों को $1\frac{1}{2}$ – $1\frac{1}{2}$ बल देना चाहिए । अर्थात् 7.5%-7.5% प्रतिशत महत्त्व देना चाहिए । अथवा ये इनके विंशोपक गुणक हैं ।

इसके बाद षोडश वर्गों में विंशोपक विभाग कहता हूँ ।

क्रमात् षोडशवर्गाणां क्षेत्राणां च पृथक् पृथक् ।
होरात्रिंशांश दृक्काणे कुचन्द्र शशिनः क्रमात् ।।22 ।।
कलांशस्य द्वयं ज्ञेयं त्रयं नन्दांशकस्य च ।
क्षेत्रे सार्धं च त्रितयं वेदाः षष्ट्यंशकस्य च ।। 23 ।।
अर्धमर्धं तु शेषाणां ह्येतत् स्वीयमुदाहृतम् ।
पूर्णं विंशोपकं विंशो धृतिः स्यादधिमित्रके ।। 24 ।।
मित्रे पंचदश प्रोक्तं समे दश प्रकीर्तितम् ।
शत्रौ सप्ताधिशत्रौ च पंचविंशोपकं भवेत् ।। 25 ।।

क्रमशः षोडश वर्गों में विंशोपक बल इस प्रकार समझना चाहिए । होरा, त्रिंशांश व दृक्काण में $\frac{1}{20}$अर्थात् 5-5%, षोडशांश में $\frac{2}{20}$ अर्थात् 10%, नवांश में $\frac{3}{20}$या 15%, गृह में $3\frac{1}{2}$ या 17.5%, षष्ट्यंश में $\frac{4}{20}$ या 20% तथा शेष वर्गों में $\frac{1}{2}$ विंशोपक अर्थात् 2.5% बल समझना चाहिए । विंशोपक बल

कुल 20 होता है । स्वक्षेत्र में यह पूरा, अधिमित्र के क्षेत्र में 18, मित्र में 15, सम में 10, शत्रु गृह में 7, अधि शत्रु के घर 5 तथा नीच में 0 होता है ।

विंशोपक बल का स्पष्टीकरण :–

वर्गविश्वाः स्वविश्वघ्नाः पुनर्विंशतिभाजिताः ।
विश्वा फलोपयोग्यं तत् पंचोनं फलदं न हि ।। 26 ।।
तदूर्ध्वं स्वल्पफलदं दशोर्ध्वं मध्यमं स्मृतम् ।
तिथ्यर्धं पूर्णफलदं बोध्यं सर्वखचारिणाम् ।। 27 ।।

अभीष्ट वर्गादि विंशोपक संख्या को ग्रह की अधिमित्रादि विंशोपक संख्या से गुणा कर 20 का भाग देने से फलोपयोगी विश्वाबल होता है ।

यह विश्वाबल यदि 5 से कम हो तो निष्फल, 5-10 तक अल्प फल देने वाला, 10-15 तक मध्यम, 15 से अधिक पूर्ण फल देता है । इस तरह सब ग्रहों का विश्वा बल समझना चाहिए ।

इसी पद्धति से पद्धति ग्रन्थों में सप्तवर्गबल साधन किया जाता है । कह चुके हैं कि स्वक्षेत्र का तात्पर्य स्वोच्च, मूलत्रिकोण व स्वराशि है ।

सप्तवर्ग में गृह का विंशोपक गुणक 5 है । स्वीय में 20 विश्वा बल ग्रह का कहा है, अतः $20 \times 5 = 100 \div 20 = 5$ विश्वा बल हुआ । गृह का अधिकतम बल 5 होने से पूर्ण बल मिला । इस बात को $\frac{5}{5}$ या $\frac{100}{100}$ या शत प्रतिशत भी कह सकते हैं । यदि इसे अंशात्मक बनाना हो, जैसी कि परिपाटी है तब $\frac{30}{30}$ कहने से $1^\circ.0'.0''$ बल, मूल त्रिकोण में चौथाई कम $0^\circ.45'.0''$ तथा स्वक्षेत्र में $0^\circ.30'.0''$ अंशादि बल होता है । पराशरोक्त यह विश्वाबल पद्धतिकारों ने थोड़ा भिन्न ढंग से ग्रहण किया है ।

हमारे उदाहरण में लग्नेश चन्द्रमा का उक्त प्रकार से बल विचार करते हैं । चन्द्रस्पष्ट $2.11^\circ.21'$ है । सप्तवर्गों में इसकी स्थिति इस प्रकार है ।

राशि में सम क्षेत्रस्थ होने से वर्गविश्वा 10 है । सप्तवर्ग में राशि गुणक विश्वा 5 है । तब $\frac{5 \times 10}{20}$ 2.5 दशमलव विधि में विश्वाबल मिला ।

द्रेष्काण में तुला राशि शुक्र का क्षेत्र है। शुक्र पंचधा शत्रु है।
$\frac{\text{स्ववर्ग } 3 \times \text{ वर्गविश्वा } 7}{20} = \frac{21}{20}$ अथवा 1.05 विश्वा बल हुआ।

होरा में चन्द्रमा सूर्य की राशि में है। सूर्य सम है। अतः
$\frac{\text{वर्गविश्वा } 10 \times \text{ स्ववर्ग } 2}{20} =$ 1 विश्वा बल हुआ।

नवांश में मकर शत्रु राशि में है। अतः $\frac{4.5\times7}{20} = \frac{31.5}{20} =$ 1.25 विश्वा बल हुआ।

सप्तमांश में सूर्य की राशि सम है। अतः $\frac{2.5\times 10}{20} = 1.25$ विश्वा बल हुआ।

द्वादशांश में शुक्र की राशि शत्रु क्षेत्र है। अतः $\frac{2\times 7}{20} = \frac{14}{20}$ या 0.42 विश्वाबल मिला।

त्रिंशांश में गुरु की राशि अधिमित्र क्षेत्र है। अतः $\frac{1\times18}{20} = \frac{18}{20}$ या 0.9 विश्वा बल हुआ। $2.5+1.05+1+1.5.75+1.25+0.42+0.9 = 8.725$ विश्वा बल (दशमलव) हुआ। इसे हम पौने नौ विश्वा कह सकते हैं। 5 से 10 विश्वा तक अल्प फल देने वाला सिद्ध हुआ। अतः लग्नेश का विश्वाबल या वर्गविंशोपक बल कम है। इसी विधि से सब ग्रहों का भी जाना जा सकता है।

बलाबल निर्णय : एक अन्य विधि –

अथान्यदपि वक्ष्येऽहं मैत्रेय त्वं विधारय।
खेटाः पूर्णफलं दद्युः सूर्यात्सप्तमके स्थिताः ।। 28 ।।
फलाभावं विजानीयात्समे सूर्यनभश्चरे।
मध्येऽनुपातात्सर्वत्रह्युदयास्तविंशोपकाः ।। 29 ।।

सभी ग्रह सूर्य से सप्तम राशि में स्थित होने पर पूर्ण फल देते हैं। यदि उक्त फल की मात्रा 1 है तो सूर्य के तुल्य ग्रह स्पष्ट रहने पर फल मात्रा 0 समझनी चाहिए। अन्यत्र स्थित रहने पर अनुपात करके 'उदयास्त विंशोपक' जान लें। अर्थात् इस तरह से प्राप्त बल उदयास्त विंशोपक कहलाता है।

वर्गविंशोपकं ज्ञेयं फलमस्य द्विजर्षभ ! ।

यच्च यत्र फलं बुद्ध्वा तत्फलं परिकीर्तितम् ।। 30 ।।

वर्गविंशोपकं चादौ उदयास्तमतः वरम् ।

हे विप्रवर मैत्रेय ! विश्वाबल की तरह उदयास्त विंशोपक भी जानना चाहिए । उदित अस्त रहने पर क्रमशः फलोदय व फलनाश समझना चाहिए । पहले वर्गविंशोपक का साधन कर बाद में उदयास्त साधन करना चाहिए ।

180° अंशों के अन्तर पर पूर्ण फल मिलेगा अर्थात् 100% शुभाशुभ फल होगा । यदि अन्तर 0 हो तो फल भी 0 होगा । अर्थात् सूर्य से युक्त होने पर सूर्य की अधिष्ठित राशि में 0 फल या अतिहीन फल, द्वितीय या द्वादश राशि तक हीनफल, 3.11 राशियों में अल्प फल, 4.10 में मध्य फल, 5.9 भावों में अति मध्य फल, 6.8 में पूर्ण व सप्तम में अतिपूर्ण बल समझना चाहिए । इस प्रकार स्थूल अनुमान रखना चाहिए ।

(i) अथवा पूर्वागत विंशोपक बल को यथावत् समझें यदि ग्रह, सूर्य से सातवीं राशि में हो ।

(ii) 6.8 में रहने पर प्रायः पूर्णवत् ही समझें या लगभग 16% कम करके शेष का ग्रहण करें ।

(iii) 5.9 भावों में लगभग 33% बल कम कर लें ।

(iv) 4.10 में ग्रह हो तो पूर्वागत विश्वा बल का 50% कम कर लें ।

(v) 3.11 में हो तो 67% कम करें, 2.12 में हो तो 83% कम करें तथा उसी राशि में हो तो 100% कम कर लें । शेष बल वास्तविक् विश्वाबल होगा । सूक्ष्मता का आग्रह हो तो स्पष्टों का अन्तर कर देखें ।

इस तरह सम्पूर्ण विश्वाफल के 7 भेद या 8 भेद बन जाएँगे । इसका विवरण आगे दिया जा रहा है ।

पूर्णं पूर्णेऽति पूर्णं स्यात् सर्वदैवं विचिन्तयेत् ।। 31 ।।

हीनं हीनेति हीनं स्यात् स्वल्पेऽल्पात्यल्पकं मतम् ।

मध्यं मध्येति मध्यं स्याद्यावत्तस्य दशास्थितिः ।। 32 ।।

$17\frac{1}{2}$ से 20 विश्वा तक अति पूर्ण, 15 से $17\frac{1}{2}$ तक पूर्ण, $12\frac{1}{2}$ से 15 तक अति मध्य, 10 से $12\frac{1}{2}$ तक मध्य, $7\frac{1}{2}$ से 10 तक अल्प, 5 से $7\frac{1}{2}$ तक अति अल्प, $2\frac{1}{2}$ से 5 तक हीन तथा 0 से $2\frac{1}{2}$ तक अतिहीन संज्ञा समझनी चाहिए ।

जैसा भी शुभाशुभ फल ग्रह का हो, वह सम्पूर्ण दशा काल में उक्त पूर्णादि मात्रा में सदैव मिलता है।

हमारे उदाहरण में चन्द्रमा लग्नेश अल्पविश्वा है। यह सूर्य से 6 राशि समाप्ति पर स्थित है, अतः इस अल्प में विशेष हानि करने की आवश्यकता नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि चन्द्रमा लग्नेश रहने से सब शुभाशुभ फलों का नियामक है, अतः चन्द्रमा की दशान्तर्दशा में शुभ फल कम तथा अशुभ फल अधिक मिलेंगे, यह सामान्य निष्कर्ष हुआ।

भाव संज्ञा निश्चय :–

अथान्यदपि वक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रृणु सुव्रत ! ।
लग्नतुर्यास्तवियतां केन्द्रसंज्ञा विशेषतः ।। 33 ।।
द्विपंचरन्ध्रलाभानां ज्ञेयं पणफराभिधम् ।
त्रिषष्ठभाग्यरिःफानामापोक्लिममिति द्विज ।। 34 ।।
लग्नात्पंचमभाग्यस्य कोणसंज्ञा विधीयते ।
षष्ठाष्टव्ययभावानां दुःसंज्ञात्रिक्संज्ञका ।। 35 ।।
चतुरस्रं तुर्यरन्ध्रं कथयन्ति द्विजोत्तम ! ।
स्वस्थादुपचयर्क्षाणि त्रिषडायाम्बराणि हि ।। 36 ।।

हे मैत्रेय ! अन्य भी कुछ विशेष बताता हूँ। 1.4.7.10 भावों या राशियों को केन्द्र कहते हैं। 2.5.8.11 को पणफर एवं 3.6.9.12 को आपोक्लिम कहते हैं।

लग्न से 5.9 को त्रिकोण कहते हैं। 6.8.12 भावों को दुःस्थान या त्रिक्स्थान कहते हैं।

4.8 भावों को चतुरस्र कहते हैं तथा विचारणीय भाव या ग्रह से 3.6.10.11 राशियाँ 'उपचय' कहलाती हैं।

लग्नादि भावों के नाम –

तनुर्धनं च सहजो बन्धुपुत्रारयस्तथा ।
युवतीरन्ध्रधर्माख्य कर्मलाभव्ययाः क्रमात् ।। 37 ।।
संक्षेपेणैतदुदितमन्यद् बुद्ध्यनुसारतः ।
किंचिद्विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ।। 38 ।।
नवमेऽपि पितुर्ज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा ।
यत्किंचिद् दशमे लाभे तत्सूर्याद्दशमे भवे ।। 39 ।।

तनु, धन, सहज, बन्धु, पुत्र, शत्रु, स्त्री, रन्ध्र, धर्म, कर्म, लाभ व व्यय ये क्रमशः 12 भावों के शीलानुसार नाम हैं। अर्थात् इन भावों से उक्त विषयों का विचार करना चाहिए, यह एक सामान्य नियम हुआ।

यह विषय मैंने संक्षेप में कहा है, अब अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ विशेष भी कहता हूँ, जैसा कि मैंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था।

लग्न से नवम भाव एवं सूर्य की अधिष्ठित राशि से नवम भाव से भी पिता के विषय में विचार करना चाहिए। अर्थात् दशम भाव से सामान्यतः विचार करते हैं लेकिन यहाँ विशेष नियम बताया गया है। लग्न से 10.11 भावों के समान सूर्य से 10.11 भावों से भी विचार करना चाहिए।

तुर्ये तनौ धने लाभे भाग्ये यच्चिन्तनं च तत्।
चन्द्रात्तुर्ये तनौ लाभे भाग्ये तच्चिन्तयेद् ध्रुवम्।। 40।।
लग्नात् दुश्चिक्य भवने यत्कुजाद् विक्रमेऽखिलम्।
विचार्यं षष्ठभावस्य बुधात्षष्ठे विलोकयेत्।। 41।।
पुत्रस्य च गुरोः पुत्रे जायायाः सप्तमे भृगोः।
अष्टमस्य व्ययस्यापि मन्दान्मृत्यौ व्यये तथा।। 42।।

लग्न से 2.4.9.11 भावों के समान ही चन्द्रमा से 2.4.9.11 भावों में भी फलविचार यथावत् करना चाहिए। यह निश्चित नियम है।

लग्न से तृतीय स्थान के समान ही मंगल से तृतीय स्थान में भी विचार करना है।

लग्न से षष्ठ स्थान के समान ही बुध से छठे स्थान को भी देखना चाहिए।

लग्न से पंचम व बृहस्पति से पंचम ये दोनों भाव पुत्रादि के विषय में समान विचारणीय हैं।

लग्न से सप्तम स्थान के समान ही शुक्र से सप्तम स्थान का विचार करना है।

जिस प्रकार लग्न से 8.12 में मृत्यु व हानि का विचार करना है, उसी तरह से शनि से 8.12 स्थानों का भी समान रूप से विचार करना चाहिए।

भावेश से भी भाव विचार –

यद्भावाद्यत्फलं चिन्त्यं तदीशात्तत्फलं विदुः।
ज्ञेयं तस्य फलं तद्धि तत्रचिन्त्यं शुभाशुभम्।। 43।।

जिस तरह भाव से पूर्वोक्त तन, धन, भ्राता आदि विषयों का विचार कहा है, उसी तरह लग्नेश जिस स्थान में हो, उस भाव को भी लग्नवत् देखें। धनेश से द्वितीय भाव में भी धन का, तृतीयेश से तृतीय भाव में भी भ्राता का इत्यादि प्रकार से सब भावेशों से भी विचार करना चाहिए।

श्लोक 39 से 43 तक बहुत महत्त्वपूर्ण व व्यापक नियम बताए गए हैं। इन नियमों को बिल्कुल मौलिक, आधारभूत, धारणी या आधारशिला की तरह समझना चाहिए।

सम्पूर्ण विषय को एक वाक्य में कहना हो तो कहेंगे कि लग्न कुण्डली में जिन–जिन बातों का विचार, जिस भाव में किया जाए, वही वही विचार भावेश व नित्य कारक ग्रहों से भी करना चाहिए।

(i) लग्न व सूर्य से नवम भाव में समान रूप से पिता के विषय में विचार करना है। यहाँ नवम भाव को भी पितृस्थान कहा है। इस नियम का प्रयोग दाक्षिणात्यों ने बहुत किया है। सूर्य, पिता का नित्य कारक है, अतः लग्न से नवम व सूर्य से नवम तथा नवमेश से नवम भाव में पिता का विचार करना चाहिए, यह नियम स्पष्ट हुआ। सूर्य व लग्न को समान श्रेणी में रखकर दोनों को ही लग्नवत् मान लिया है।

(ii) चन्द्रमा से 2.4.9.11 भावों को भी लग्नवत् ही देखें। अर्थात् जो विचार लग्न से द्वितीय में (धन, कुटुम्ब, वाणी आदि) करना है, वह चन्द्रमा से द्वितीय में भी देखना है। इसी तरह चतुर्थ में सुख सम्पत्ति, वाहन, बन्धु आदि का विचार लग्न व चन्द्र से समान है। यही स्थिति 9.11 भावों की भी है।

अतः लग्न, चन्द्र व सूर्य राशि व इनके स्वामियों को समान महत्त्व देना चाहिए, यह नियम स्वतः स्फुट हुआ लेकिन भाव विचार में उदय लग्न प्राथमिक आधार है।

(iii) लग्न, चन्द्र व सूर्य ये तीनों ही लग्नवत् हैं। अतः सामान्यतया सभी भावफलों का विचार इन लग्नों में करते हुए भी सूर्य कुण्डली के 9.10.11 भाव लग्न के 9.10.11 भाव समान हैं।

(iv) चन्द्र माता का कारक है। अतः चन्द्र कुण्डली में विशेषतया 2.4.9.11 भावों को लग्नवत् मानें। चन्द्र व लग्न से चतुर्थ तथा लग्न से चतुर्थ भावेश से चतुर्थ में माता का विचार होगा।

(v) मंगल भ्रातृकारक है। अतः मंगल से तृतीय भाव को भी लग्न से तृतीयवत् मानना। भाई का विचार लग्न से तृतीय में, मंगल से तृतीय में तथा तृतीयेश से तृतीय में करना है।

(vi) लग्न से षष्ठ भाव, बुध से षष्ठ भाव तथा षष्ठेश से षष्ठ भाव समान हैं। षष्ठभाव मामा, शत्रु व रोग का है।

(vii) पुत्र विचार लग्न से पंचम, गुरु से पंचम व पंचमेश से पंचम में करना है। गुरु सन्तान का निसर्ग कारक है।

(viii) सप्तमभाव, सप्तमेश से सप्तम व शुक्र से सप्तम में पत्नी आदि का समान विचार है।

(ix) लग्न से 8.12 व शनि से 8.12 एवं लग्न से अष्टमेश से अष्टम भाव, द्वादशेश से द्वादश भाव समान विचारणीय हैं।

इस विषय को जैमिनीय मत में भी माना गया है। (देखें हमारा जैमिनिसूत्र शान्तिप्रियभाष्य, पृ. 18-19)

हमारे विचार से लग्न को 50% महत्त्व देकर चन्द्र व सूर्य को 25%-25% महत्त्व देना चाहिए, यह लग्नवत् सारे भावों का नियम हुआ। लेकिन महर्षि द्वारा कहे गए पूर्वोक्त भावों को बराबर महत्त्व देना चाहिए।

विचारार्थ क्रमिक उदाहरण को ही लेते हैं। लग्नेश चन्द्र त्रिक् में गया है। चन्द्र कुण्डली में लग्नेश बुध भी त्रिक् में गया है। सूर्य कुण्डली में लग्नेश शनि, एकादश में गया है। यह स्वास्थ्य व शरीर सम्पत्ति की कमी दिखाता है।

लग्न से 8.12 में शुभ ग्रह, चन्द्र से 8.12 में पाप ग्रह तथा सूर्य से 8.12 में शुभ ग्रह एवं द्वादश ग्रह रहित है। अतः आयु है।

भाग्य भाव का विचार अभीष्ट है। लग्न से नवम में कोई ग्रह नहीं है। स्वामी गुरु की त्रिपाद दृष्टि है। कारक मंगल व शनि की भी आधी दृष्टि है। भाग्य मध्यम प्रतीत हुआ।

चन्द्र से नवम में शुक्र मित्र क्षेत्री, वर्गोत्तमी है। भावेश शनि त्रिपाद दृष्टि से देखता है। गुरु की भी पूर्ण दृष्टि है, अतः भाग्य उत्तम प्रतीत हुआ।

लग्न से नवमेश गुरु है। गुरु से नवम भाव भी विचारणीय हुआ।

गुरु से नवम में मेष राशि है। उस पर किसी ग्रह की दृष्टि नहीं है। लेकिन 3.11 उपचयों में शुभ ग्रह हैं। उसका स्वामी गुरु कुण्डली में चतुर्थ में है, यह केन्द्रेश व त्रिकोणेश होने से परम कारक हुआ। दूसरे केन्द्रेश शनि से युक्त भी है। राहु का बल भी प्राप्त हो रहा है, अतः भाग्य उत्तम है। निष्कर्षतः भाग्य अच्छा सहयोग देगा, यह कहना उपयुक्त है। लेकिन कब ? जब बलवान् भाग्य भवन गुरु व चन्द्र से मिले। गुरु से नवम का

स्वामी मंगल, आयु 28 वर्ष है। अतः 28 वर्ष के उपरान्त भाग्य समृद्धि शुरू होगी। चन्द्र से नवम में शनि की राशि है। अतः 36 वर्ष के उपरान्त या शनि की अवस्थानुसार प्रौढ़ावस्था में विशेष भाग्योदय होगा। मंगल, शनि, गुरु, दशाओं में लग्नेश या राशीश की दशाएँ या शुभ दशाएँ या इन्हीं में परस्पर विनिमय से दशान्तर्दशा आने पर विशेष फलोदय होगा।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां
वर्ग–विवेचनाध्यायोऽष्टमः ।।8।।

9

।। अथ राशिदृष्टिभेदाध्यायः ।।

राशियों की दृष्टि –

मेषादीनां च राशीनां चरादीनां पृथक् पृथक् ।
दृष्टिभेदं प्रवक्ष्यामि श्रृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।।1।।
राशयोऽभिमुखं विप्र ! तथा पश्यन्ति पार्श्वभे ।
रन्ध्रे षष्ठे तथा द्यूनेऽभिमुखो राशिरुच्यते ।।2।।

राशियाँ एक दूसरे पर दृष्टि रखती हैं। हे विप्रवर ! अब मैं दृष्टिभेद बताता हूँ।

सभी राशियाँ अपनी सम्मुख राशि को व अगल–बगल की राशि को देखती हैं।

जैमिनीय मत में भी राशियों की दृष्टि को बड़ी प्रमुखता से कहा गया है। ध्यातव्य है कि वहाँ ग्रहों की दृष्टि प्रचलित पद्धति के समान द्विपाद, त्रिपाद आदि नहीं होती है। वहाँ राशि के अनुसार ही ग्रहों की दृष्टि है। महर्षि भी आगे इसी का उल्लेख कर रहे हैं। प्रचलित ग्रह दृष्टि भी मूल रूप से पाराशरीय नहीं हैं।

अभिमुख :– सम्मुख राशि, जो राशि ठीक सामने पड़े। सदैव सप्तम राशि सम्मुख नहीं होती। चर राशि में आठवीं, स्थिर में छठी व द्विस्वभाव में सप्तम राशि सम्मुख होती है। ऐसा क्यों होता है यह आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

पार्श्व राशि :– अगल–बगल की राशि। द्विस्वभाव राशि के सन्दर्भ में यह लागू नहीं होता। चर राशि के सन्दर्भ में पिछली राशि व स्थिर के सन्दर्भ में दूसरी राशि का ग्रहण होता है।

दृष्टिचक्रोद्धारः–

चक्रन्यासमहं वक्ष्ये यथावद् ब्रह्मणोदितम् ।
यस्यविज्ञान मात्रेण दृष्टिभेदः प्रकाश्यते ।। 3 ।।
पूर्वं मेषवृषौ लेख्यौ कर्कसिंहौ च दक्षिणे ।
तुलाली वारुणे विप्र ! मृगकुम्भौ तथोत्तरे ।। 4 ।।
अग्निकोणे तु मिथुनं नैऋत्यां कन्यकां द्विज ।
वायव्यां धनुषं लेख्यमीशाने मीनमालिखेत् ।। 5 ।।
चतुरस्रं च विन्यासं ज्ञायते द्विजसत्तम ।
वृत्ताकारं विशेषेण ब्रह्मणां चोदितं पुरा ।। 6 ।।

ब्रह्माजी द्वारा कहा गया दृष्टि चक्र निर्माण प्रकार कहता हूँ, जिसके जानने से दृष्टिभेद सर्वथा स्पष्ट हो जाता है ।

पूर्व में मेष वृष, दक्षिण में कर्क सिंह, पश्चिम में तुला वृश्चिक, उत्तर में मकर कुम्भ लिखें ।

अग्निकोण में मिथुन, नैर्ऋत्य कोण में कन्या, वायव्य में धनु तथा ईशान में मीन राशि की स्थापना करने से दृष्टि चक्र बनता है ।

इस चक्र को चौकोर या वृत्ताकार लिखना चाहिए । ब्रह्माजी ने विशेषतया वृत्ताकार लिखने के लिए कहा है ।

।। दृष्टि चक्र ।।

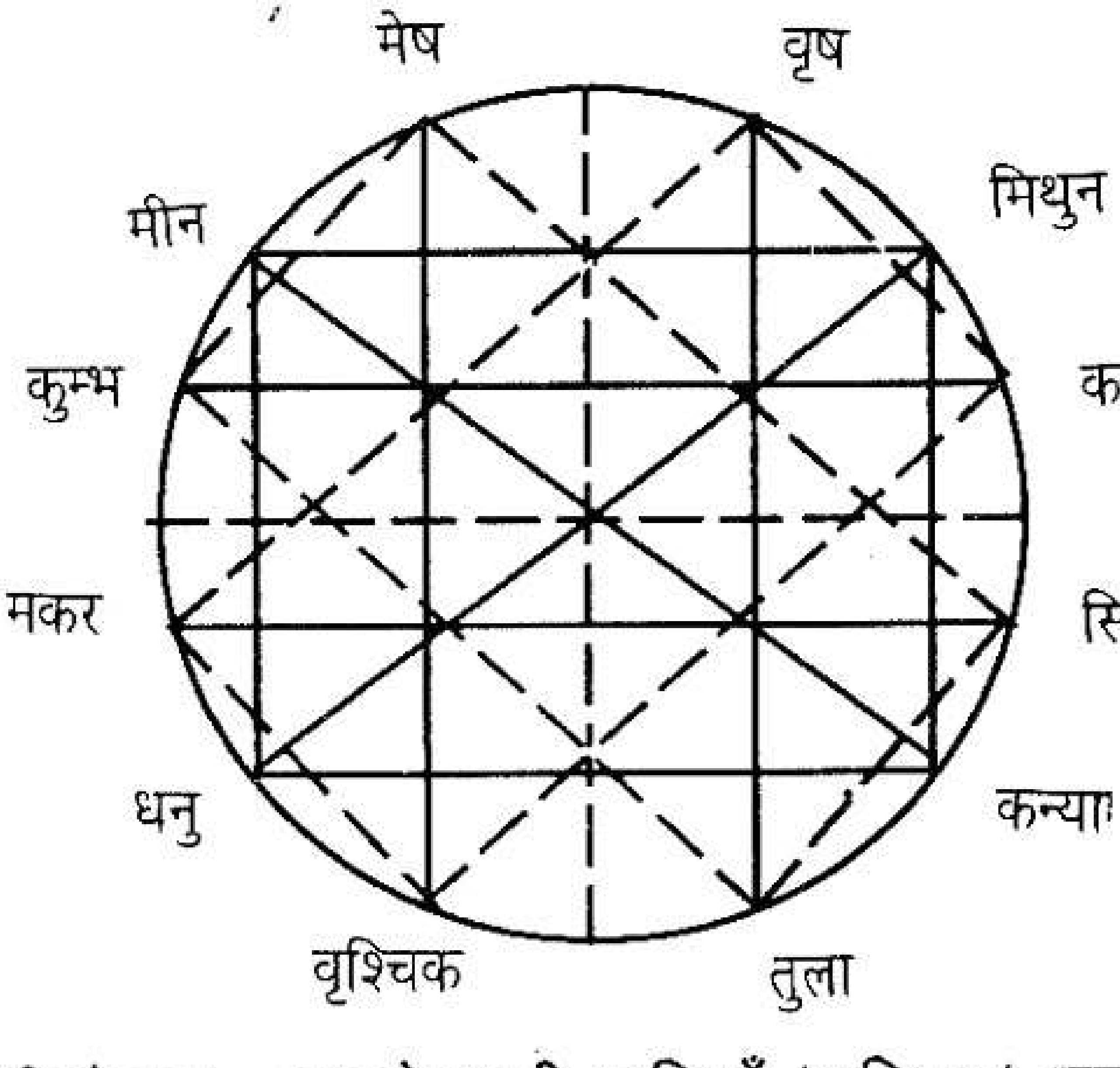

सीधी रेखा पर पड़ने वाली राशियाँ 'अभिमुख' कहलाती हैं । यह प्रत्यक्ष है । दक्षिण भारतीय कुण्डली चक्र को यदि देखें तो वह चतुरस्र या

चौकोर दृष्टि चक्र ही है । चतुष्कोण भी वृत्तान्तर्गत ही होता है यह पीछे चक्र में दिख ही रहा है । इस चक्र के अनुसार निर्णय करने पर निष्कर्ष निकलता है–

सबसे पहले चर राशियों की दृष्टि निर्णीत करेंगे । मेष वृश्चिक, कर्क कुम्भ, तुला वृष, मकर सिँह एक सीध में या सम्मुख पड़ रही हैं । अतः ये जोड़े अपने–अपने जोड़े की दूसरी राशियों को देखते हैं । यह अभिमुख दृष्टि है । पार्श्व दृष्टि के सिद्धान्त से आजू–बाजू की रेखाओं पर मेष की दृष्टि सिँह व कुम्भ पर कर्क की वृश्चिक व वृष पर इत्यादि प्रकार से निश्चित होती है । इसी बात को हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि सभी चर राशियाँ, अपने से दूसरी स्थिर को छोड़कर शेष सब स्थिर राशियों को देखती हैं ।

स्थिर राशियाँ द्वादशस्थ चर को छोड़कर सब चरों को देखती हैं । द्विस्वभाव राशियाँ स्वयं को छोड़कर शेष सब द्विस्वभावों को देखती हैं ।

चरं धनं बिना स्थास्नुं स्थिरमन्त्यं विना चरम् ।
युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्यन्तीत्ययमागमः ।।

(जैमिनि : वृद्धकारिका)

इसी आशय को महर्षि पराशर ने किस प्रकार कहा है, यह अगले श्लोकों में स्पष्ट है ।

यथा चरः स्थिरानेवं स्थिरः पश्यति वै चरान् ।
द्विस्वभावो विनात्मानं द्विस्वभावान् प्रपश्यति ।।
समीपस्थं परित्यज्य राशींस्त्रीन् ननु पश्यति ।। 7 ।।

अपनी पास की राशि को छोड़कर चर राशि तीन स्थिरों को, स्थिर राशि समीपस्थ चर रहित तीन चरों को व द्विस्वभाव स्वयं को छोड़कर शेष तीन द्विस्वभावों को देखती हैं ।

ग्रहों की दृष्टि :–

सूर्यादयः क्रमेणैव पश्यन्ति च परस्परम् ।
राशित्रयं त्रयं विप्र ! सर्वराशिगता ग्रहाः ।। 8 ।।
चरेषु संस्थिताः खेटाः पश्यन्ति स्थिर सङ्गतान् ।
स्थिरेषु संस्थिता एवं पश्यन्ति चर संस्थितान् ।। 9 ।।
उभयस्थास्तु सूर्याद्याः पश्यन्त्युभय संस्थितान् ।
निकटस्थं विना खेटा पश्यन्तीत्ययमागमः ।। 10 ।।

सूर्यादि ग्रह भी क्रमशः पूर्वोक्त राशि दृष्टि के अनुसार ही देखते हैं। ग्रह जिस राशि में स्थित है, वह राशि जिन तीन राशियों को देखती है, तो उन राशियों में स्थित ग्रह भी उसी प्रकार दृष्टि रखते हैं।

चर राशि गत ग्रह समीपस्थ एक स्थिर को छोड़कर शेष तीनों स्थिरस्थ ग्रहों को देखेगा। स्थिर राशिगत ग्रह समीपस्थ चर को छोड़कर शेष तीनों चरों में संस्थित ग्रहों को देखेगा।

द्विस्वभावस्थ ग्रह अपने से अतिरिक्त तीनों द्विस्वभावस्थ ग्रहों को देखेगा, यह आगम है अर्थात् शास्त्र या ब्रह्मा जी की आज्ञा है।

इसी बात को वृद्धकारिकाओं में भी यथावत् कहा गया है–

चरस्थं स्थिरगः पश्येत् स्थिरस्थं चरराशिगः।

उभयस्थं तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम्।। (वृद्धकारिका)

इस दृष्टि में एकपाद, द्विपाद, त्रिपाद आदि दृष्टि भेद न होकर सर्वत्र पूर्ण दृष्टि ही स्वीकार्य है। यह राशि के आधार पर ग्रहों की दृष्टि हुई।

दूसरी बात यह भी ध्यातव्य है कि उत्तर भारत में प्रचलित राशि चक्र विधि, जिसमें दाएँ से बाएँ राशियाँ लिखी जाती हैं, वह बाद की उपज है। 'चरंधनं विना' कहने से 'मेष राशि द्वितीयस्थ वृष को छोड़कर ऐसा कहने से दक्षिण भारतीय राशि चक्र विधि ही आर्ष सिद्ध होती है।

कतिपय प्रतियों में प्रचलित ग्रह दृष्टि के प्रतिपादक श्लोक भी संगृहीत हैं। उनमें व प्रचलित दृष्टि में भेद है। मंगल की सातवें एकपाद, शनि की सप्तम में तीन पाद एवं गुरु की सप्तम में द्विपाद दृष्टि बताई गई है। यह विरुद्ध है।

होराशास्त्रे भिन्नदृष्टिः खेटानां च परस्परम्।

त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे।। 11।।

शनिर्देवगुरुर्भौमः परे च वीक्षणेऽधिकाः।

पदार्धं त्रिपदं पूर्णं वदन्ति गणकोत्तमाः।। 12।।

होरा शास्त्र में ग्रहों की दृष्टि अलग प्रकार से कही गई है। 3.10, 5.9, 4.8, व 7 भावों में ग्रहों की दृष्टि होती है।

शनि, गुरु व मंगल क्रमशः उक्त से अधिक दृष्टि रखते हैं। यह दृष्टि एकपाद (पद) द्विपाद (अर्ध), त्रिपाद व पूर्ण भेद से चार प्रकार की होती है।

शनिपादं त्रिकोणेषु चतुरस्रे द्विपादकम्।

त्रिपादं सप्तमे विप्र! त्रिदशे पूर्णमेव हि।। 13।।

चतुरस्रे गुरुः पादं सप्तमे च द्विपादकम् ।

त्रिपादं त्रिदशे विप्र ! पूर्णं पश्यति कोणभे ।। 14 ।।

सप्तमे पादमेकं च द्विपादं त्रिदशे कुजः ! ।

त्रिपादं च त्रिकोणेषु पूर्णं स्यात् चतुरस्रके ।। 15 ।।

अन्येषां त्रिदशे पादं द्विपादं च त्रिकोणगे ।

चतुरस्रे त्रिपादं च पूर्णं पश्यति सप्तमे ।। 16 ।।

शनि 5.9 में एकपाद, 4.8 में द्विपाद, 7 में त्रिपाद, 3.10 में पूर्ण दृष्टि रखता है ।

बृहस्पति 4.8 में एकपाद, 7 में द्विपाद, 3.10 में त्रिपाद व 5.9 में पूर्ण दृष्टि रखता है ।

मंगल 7 में एकपाद, 3.10 में द्विपाद, 5.9 में त्रिपाद व 4.8 में पूर्ण दृष्टि रखता है ।

अन्य ग्रहों की 3.10 में एक पाद, 5.9 में द्विपाद, 4.8 में त्रिपाद व 7 में पूर्ण दृष्टि होती है ।

प्रचलित मत से मंगल, शनि, गुरु समेत सभी ग्रह, सप्तम पर पूर्ण दृष्टि ही रखते हैं । लघुपाराशरीकार ने भी प्रचलित मतानुसार ही दृष्टि मानी है । वराह, यवन, गर्गादि ने भी यही माना है । अतः यह दृष्टिभेद किसी अति प्राचीन काल की दृष्टि को द्योतित करता है । ग्रहों की दृष्टि में मतमतान्तर थे, इसकी सूचना तो हमें ग्रहदृष्टि से सम्बद्ध बृहज्जातक के इस श्लोक में ही मिल जाती है ।

त्रिदशत्रिकोणचतरस्रसप्तमान्-------किल वीक्षणेऽधिकाः ।

यहाँ प्रयुक्त 'किल' शब्द वराह की लड़खड़ाहट को ही दिखाता है । इससे प्रतीत होता है कि वराह के समय तक, विशेषतया बृहज्जातक की रचना तक प्रचलित निश्चित मत बहुमत सम्मत होते हुए भी, सबको मान्य नहीं रहा होगा । इसका विरोध भी कुछ लोग करते होंगे ।

'किलेति शब्देन ग्रह दृष्टे निश्चितत्वं सूचितम् । (रुद्रभट्ट)

ग्रहों की दृष्टि के विषय में समालोचनात्मक विधि से परीक्षा की आवश्यकता है । षष्ठ स्थान में कोई दृष्टि न होना व्यावहारिक व तार्किक दोनों ही प्रकार से विरुद्ध है । वर्तमान दृष्टि विधि यवनों की देन है, जिसे वराहमिहिर ने अपनाया था, तथा उसे बाद में किसी ने पाराशर होरा में भी मिला दिया होगा ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पं. सुरेशमिश्रकृतायां हिन्दीव्याख्यायां राशि–दृष्टि भेदाध्यायो नवमः ।। 9 ।।

10

। । अथ अरिष्टाध्यायः । ।

प्रथम दृष्ट्या अरिष्ट

चतुर्विंशतिवर्षाणि यावद्गच्छन्ति जन्मतः ।

जन्मारिष्टं तु तावत्स्यादायुर्दायं न चिन्तयेत् । । 1 । ।

जन्म समय से चौबीस वर्ष की अवस्था होने तक बालारिष्ट योग प्रभावी होते हैं । अतः चौबीस वर्ष तक आयुर्दाय का गणित द्वारा साधन नहीं करना चाहिए ।

चौबीस वर्ष तक बालारिष्ट मानना भी एक सम्प्रदाय है । लेकिन यह कथन गड्डलिका प्रवाह अर्थात् अन्धानुकरण ही है । शास्त्रकारों ने तीन प्रकार के अरिष्ट कहे हैं । योगज, नियत व अनियत । अरिष्ट अर्थात् अनिष्ट अर्थात् अशुभ चिन्ह । जिन चिन्हों से जीवन का संकट प्रतीत हो, उन्हें **अरिष्ट** या **रिष्ट** कहते हैं

'रोगिणो मरणं यस्मादवश्यम्भावि लक्ष्यते ।

तल्लक्षणमरिष्टं स्याद् रिष्टमप्यभिधीयते । ।

नवजात शिशु, रोगी, दुर्घटनाग्रस्त, विपत्तिग्रस्त व्यक्ति या प्राणी के लिए जीवन रक्षा के सन्दर्भ में प्रतिकूल बातें, चिन्ह लक्षण अरिष्ट हैं । अतः ग्रहकृत अरिष्टमात्र का ही यहाँ ग्रहण न होकर जीवन रक्षा हेतु सामान्य सावधानी रखना भी अभीष्ट है ।

हमारे विचार से अरिष्ट योगों में योगों द्वारा अरिष्टों का विचार सर्वप्रथम करना चाहिए । अरिष्ट योगों के उपरान्त ही दशान्तर्दशा व गणितागत आयु के आधार पर विचार करना चाहिए ।

सद्योरिष्ट योग जन्म से एक वर्ष तक, अरिष्टयोग अधिकतम 24 वर्ष तक, मध्यम मान से 12 वर्ष तक तथा सामान्यतया 8 वर्ष तक प्रभावी होते हैं । हमारे विचार से 12 वर्ष तक अरिष्ट योगों का प्रभाव मानना अधिक व्यावहारिक है ।

आचार्यो ने कहा है कि चार वर्ष तक बालक माता–पिता के दोषों से अर्थात् रक्तवीर्य दोष से, गुणसूत्रों के दोष से या पैतृक दोषों से मृत्यु प्राप्त कर सकता है । आठ वर्ष तक बालग्रहों के कारण अर्थात् चेचक,

खसरा, पोलियो आदि बीमारियों से तथा बारह वर्ष तक अपने दोषों से मृत्यु को प्राप्त होता है। अपने दोष अर्थात् बालक-स्वभाव के कारण खतरनाक स्थानों पर चले जाना, अनजानी चीजें चखने का लोभ, विशेष तर्क बुद्धि न होने से बहुत तेजी से भागना, साइकिल आदि चलाना तथा दुर्घटना–ग्रस्त हो जाना आदि अपने दोष हैं। इसके बाद बालक निज सुरक्षा के प्रति सावधान हो जाता है। अतः ग्रहारिष्ट का विचार आठ वर्ष तक गम्भीरता पूर्वक करके चिकित्सा (टीका लगवाना, समय पर दवा दिलवाना) जप-होम उपाय अर्थात् आस्तिकता, परोपकार, पूजा, दान, व सम्यक् चरित्र निर्माण हेतु प्रेरित करना इत्यादि विधियों से बालक की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। वराहादि आचार्यो ने आठ वर्ष वाले पक्ष को विशेष आदर दिया है।

चन्द्र या शुभग्रहों से अरिष्ट :–

षष्ठाष्टरिष्फगश्चन्द्रः क्रूरैः खेटैश्च वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः।।2।।
शशिवन्मृत्युदाःसौम्याश्चेद्वक्राःक्रूरवीक्षिताः।
शिशोर्जातस्य मासेन लग्ने सौम्यविवर्जिते।।3।।

जन्म समय में 6.8.12 भावों में स्थित चन्द्रमा यदि कई पापी ग्रहों द्वारा दृष्ट हो तो बालक की तुरन्त मृत्यु हो जाती है। अर्थात् जन्मते ही प्राण संकट उपस्थित होता है। यदि वहीं 6.8.12 में स्थित चन्द्रमा साथ ही शुभ ग्रहों से भी देखा जाता हो तो 8 वर्ष के भीतर मृत्युप्रद होता है।

इसी तरह अन्य शुभ ग्रहों से भी अरिष्ट विचार करना चाहिए। यदि बुध, गुरु, शुक्र में से दो या तीनों 6.8.12 में वक्री होकर स्थित हों तथा क्रूर ग्रहों से देखे जाते हों तो एक मास के भीतर मृत्युप्रद होते हैं। इस योग के साथ यदि लग्न में कोई शुभ ग्रह स्थित हों तो उक्त 6.8.12 में स्थित शुभ ग्रह मृत्युप्रद नहीं होते।

यदि 1.8 भाव में मंगल पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तथा किसी भी शुभ ग्रह की उस पर दृष्टि न हो, तो बालक के लिए मृत्युप्रद योग है।

इसी पद्धति से सूर्य व शनि 1.8 में पापयुक्त–दृष्ट तथा शुभ ग्रहों के दृग्योग से रहित हों तब वे भी मृत्युकारक होते हैं।